❑ नानेश वाणी – 8
परदे के उस पार

❑ आचार्य श्री नानेश

❑ प्रथम संस्करण
मार्च 2003, 1100 प्रतियाँ

❑ मूल्य . 30/–

❑ अर्थ सहयोगी
श्री तेजराजजी नंगावत
मैसूर (बेमाली–भीलवाडा)

❑ प्रकाशक
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर

❑ मुद्रक
दिलीपकुमार वया "अमित"
'मिच्छामि दुक्कडम्' हिन्दी मासिक
12, वीरप्पन स्ट्रीट,साहूकारपेट, चेन्नई–600 079
दूरभाष . (044) 25383350

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियो मे हैं जिन्होने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चल कर भव्य आत्माएँ अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती है। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानो मे वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका यह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व मे समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप मे उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सासारिक प्राणियो के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तम्भ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मियॉ युगो–युगो तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे इसके लिये यह आवश्यक है कि न तो उन साहित्य रश्मियो को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनो हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जाये। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को "नानेश वाणी" पुस्तक श्रृखला के अतर्गत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सन्दर्भ मे बैगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपानी ने अर्थ सबधी व्यवस्था मे जो सद्प्रयत्न किया, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व मे 'परदे के उस पार' नाम से प्रकाशित पुस्तक की नई आवृत्ति है। इसमे कुछ सशोधन परिष्करण भी हुआ है। इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले उदारमना सुश्रावक श्री तेजराजजी नगावत, मैसूर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हूँ।

यद्यपि सम्पादन–प्रकाशन मे पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गई हो तो सुधी पाठको से निवेदन है कि वे हमे अवगत कराये ताकि आगामी सस्करणो मे भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक

शान्तिलाल साड

सयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ भा सा जैन सघ, समता भवन, बीकानेर

अर्थ-सहयोगी एक परिचय

श्री तेजराजजी नगावत, मैसूर

राष्ट्रभक्त लोह पुरुष वीर महाराणा प्रताप एव दान शिरोमणि वीर भामाशाह के मेवाड मे भीलवाडा जिले के बेमाली ग्राम मे धर्मनिष्ठ श्रावक स्व श्री किशनलालजी नगावत एव सुश्राविका स्व श्रीमती मगनबाई के धार्मिक परिवार मे सन् 1945 मे श्रीमान् तेजराजजी नगावत का जन्म हुआ।

बाल्यकाल से ही धार्मिक वातावरण मे परिवार और समाज से जुडे श्री तेजराजजी नगावत ने अपने व्यापार को दक्षिण भारत की ऐतिहासिक नगरी मैसूर मे वि स 2018 मे स्थापित किया। आपने कमजोर वर्ग के लोगो को सहायता, सुझाव देकर जाति गौरव के साथ अनेक बधुओ को आगे बढाया है।

समय–समय पर आपने गरीब बच्चो को स्कूलो मे समवस्त्र वितरण, रोगियो को औषधीदान आदि कार्यो मे आगे बढकर कार्य किया है।

मधुर भाषी, शात स्वाभावी एव मिलनसार होने से मैसूर शहर की विभिन्न सस्थाओ ने आपको गौरवान्वित करते हुए श्री स्थानकवासी जैन सघ ने सह–मत्री, कोषाध्यक्ष पदो पर, मैसूर एव मडिया जिले के दि पान ब्रोकर्स एसोसिएशन ने अध्यक्ष पद पर विभूषित किया। वर्तमान

मे आप स्थानकवासी जैन सघ के उपाध्यक्ष हैं।

आपकी धर्मपत्नी सुश्राविका श्रीमती लादीबाई आपको हर कार्य मे सदैव साथ रहते हुए प्रोत्साहित करती हैं। आपके सुपुत्र शा नेमीचन्दजी एव शा दिनेशकुमारजी और सुपौत्र चि अभिषेककुमार, चि अक्षयकुमार, चि अनूप एव चि आशीष अतीव सुसस्कारी हैं। आपने उदार हृदय पूर्वक नानेशवाणी पुस्तक मे अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया है।

आपके उज्ज्वल भविष्य की मगल कामनाओ के साथ।

आपका व्यावसायिक प्रतिष्ठान
सुनिता ज्वेलरी हाल
72, अशोका रोड, मैसूर–570001
दूरभाष 0821–520834, 433110

परदे के उस पार (क्या है?)

विश्व का जो रूप वर्तमान मे परिलक्षित हो रहा है, उससे भी कई गुणा अधिक विश्व का महत्वपूर्ण रूप आज भी अदृश्य है, जिसे दृश्यभूत करने के लिये आज के वैज्ञानिक दिन–रात परिश्रम कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप नये–नये आविष्कार सामने आ रहे हैं, किन्तु यह कहना भी सर्वथा सत्य है कि वे इन भौतिक साधनो से कितने ही आविष्कार कर ले, पर उनके आविष्कार समुद्र मे बून्द तुल्य ही होगे। क्योकि यह दुनिया अचिन्त्य शक्तियो से भरी पडी है।

उन सब शक्तियो की खोज जिस रफ्तार से मानव इस यात्रिकी युग मे कर रहा है, अगर वह उसी रफ्तार से करता है और एक जिन्दगी नही, ऐसी अनेक जिन्दगिया व्यतीत कर दे फिर भी वह यत्रो के माध्यम से उन अदृश्य शक्तियो को दृश्यमान नही बना सकता । यह भी सत्य है कि मानव का जितना अदृश्य तत्वो पर आकर्षण रहा है, उतना दृश्यमान तत्वो पर नही है। एक बच्चे को ही देख लीजिए–उसके सामने आप दो प्रकार के खिलौने ले जाए और उसमे से एक खुला हुआ और दूसरा डिब्बे मे बद हो। बच्चे को आप वह खुला खिलौना दे दे और डिब्बा न खोले, बच्चे को भी उसे खौलने के लिये इन्कार कर दे तो फिर देखिये, कैसी स्थिति घटित होती है। वह बच्चा उस दिये हुए खिलौने से न खेलकर जो डिब्बे मे बन्द खिलौना है, उसे पाने की कोशिश करेगा, जिद्द करेगा, रोएगा और उसे पाकर ही वह शात होगा।

यह बात उस बच्चे की ही नही है बडे–बडे बुद्धिमान पुरूषो की भी ऐसी ही वृत्ति देखने को मिलती है। किसी भी व्यक्ति को आप यह कह दे कि इधर झाकना मना है तो वह सबसे पहले उधर ही झाकने का प्रयास करेगा। जिसके परदा है, उस वस्तु को पहले देखने का प्रयास करेगा।

परदे के उस पार क्या है, उसे जानने एव देखने के लिये मानव का आकर्षण अत्यधिक रहता है। अत्यन्त उत्सुकता के साथ वह जानने की कोशिश करता है। वर्तमान मे जितने भी आविष्कार हमे देखने, पढने एव सुनने को मिल रहे है, उन सब का आविष्कार किसी एक या दो वैज्ञानिको का नही, अपितु हजारो वैज्ञानिको के अत्यन्त परिश्रम का परिणाम है कि आधुनिकतम आविष्कार हमारे सामने आये हैं, आ रहे हैं, जिनकी हम कल्पना भी नही कर सकते। लेकिन विचार यह करना है कि इन आविष्कारो की उपज कहॉ से होती है? आखिर होती तो मानव के भीतर से ही है। यदि मानव की ज्ञान शक्ति काम न करे तो यह आविष्कार कभी नही हो सकते। अत यह स्पष्ट है कि इन सब दृश्यमान आविष्कारो की जननी मानव की भीतरी शक्ति ही है। तव क्यो न ऐसा सत्पुरूषार्थ किया जाए, जिससे कि भीतरी शक्ति के परिपूर्णत अनावृत्त होने पर ससार की समस्त अदृश्य वस्तुए एकदम स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे। जैसा कि बतलाया कि मानव का आकर्षण परदे के उस पार विद्यमान वस्तु पर अधिक होता है तो परदे के उस पार रही उन समस्त वस्तुओ को जानने एव देखने के लिये उन सब की जननी शक्ति को ही जानने एव देखने का प्रयास किया जाए।

मानव की उस भीतरी शक्ति पर एक दो परदे नही अपितु अनेक तरह के परदे लगे हुए हैं। सबसे पहले तो हमे जो परदा शरीर का दृश्यमान हो रहा है, इस दृश्यमान शरीर के परदे के अन्दर अपेक्षा से सूक्ष्म रूप से विद्यमान तैजस् और कार्मण शरीर के परदे हैं। इन तीनो शरीरो को आज की भाषा मे (लगभग) फिजिकल बोडी, एथरिकल वोडी ओर एस्ट्रूल बोडी कहते हैं। इन तीनो पर्दो मे रही हुई मानव की चेतन्य शक्ति पर कर्मो के असख्य परदे पडे हैं। यद्यपि मूलत तो कर्म आठ ही प्रकार के है, किन्तु उत्तरभेद से उनके 148/158 भेद भी किये जाते हें। उन भेदो मे से एक–एक कर्म प्रकृति के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के वध की अपेक्षा अध्यवसायो की दृष्टि से असख्य भेद वन जाते हें। ये असख्य परदे हमारी भीतरी, परिपूर्णज्ञानादि शक्तियो को आवृत किये हुए हैं। उन शक्तियो को अनावृत करने के लिये इन

परदो को हटाना आवश्यक ही नही अनिवार्य है।

जब मानव का आकर्षण 'परदे के उस पार' क्या है? उसमे रहा हुआ है तो हमे हमारे शरीर के परदे के उस पार क्या है? इसे जानने एव देखने का प्रयास करना चाहिये। यदि इसके प्रति हमारा आकर्षण, तीव्रता के साथ बढा तो हमे तदनुसार ही पुरूषार्थ भी करना होगा।

इस भीतरी शक्ति को अनावृत करने के लिये बाहर के यत्र कार्यकारी नहीं हो सकते। उसके लिये भीतर का ही यत्र पैदा करना होगा। क्योकि हीरे को देखने–परखने के लिये वैसा ही कॉच होना आवश्यक है।

हमारी भीतरी शक्ति पर पडे परदो को हटाने के लिये ध्यान ही एक ऐसा यत्र है, जिसके माध्यम से हम भीतर मे प्रवेश कर सकते हैं। लेकिन समस्या आज हमारे सामने यह खडी हो गई है कि ध्यान भी एक नही, अनेक तरह के प्रचलित हो गये हैं, तब उनमे से कौनसा ध्यान अपनाया जाए? वस्तुत इस पर ध्याता का गम्भीरता से विचार अपेक्षित हे।

समता विभूति, समीक्षण ध्यानयोगी आचार्य श्री नानेश ने हमारे समक्ष आगमिक धरातल से 'समीक्षण ध्यान' की प्रक्रिया रखी है जिसके माध्यम से परदे के उस पार रही शक्ति को देखा जा सकता है। आवश्यकता है अवधानता के साथ बोध पाकर उसे प्रायोगिक रूप देने की।

जीवन के व्यावहारिक पक्ष मे ध्यान की भूमिका कैसी रहे, साथ ही भीतर मे भी कैसे प्रवेश किया जाए, इसके लिये आचार्य प्रवर के अहमदाबाद वर्षावास मे हुए प्रवचन अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं। उन प्रवचनो मे से कुछेक प्रवचनो को मैने पूर्व मे समीक्षण धारा के रूप मे सम्पादित किया था। अब आगे के कुछेक प्रवचनो को 'परदे के उस पार' के नाम से सम्पादित किया है।

वस्तुत ये प्रवचन जिज्ञासु के ज्ञान–नेत्र को खोलने वाले हैं, अन्त चक्षु को उदघाटित करने वाले हैं। यदि इसके अध्ययन के साथ समीक्षण ध्यान के माध्यम से भीतर मे झाकने का प्रयास किया गया तो हमारे वे सारे के सारे परदे हटते चले जायेगे और परदे के उस पार रहने वाली हमारी उस शक्ति की अभिव्यक्ति होगी, जिसके बाद कोई भी दृश्य हमारे से अदृश्य नही रह जाएगा। सुख का अक्षय स्रोत फूट पडेगा, शाति के महकते उपवन मे हमारी आत्मा, शाश्वत रूप से रमण करने लगेगी।

– मुनि ज्ञान

अनुक्रमणिका

आन्तरिक मल का विसर्जन हो

- एकान्त मे समीक्षण का प्रयोग हो।
- मन का कचरा बाहर निकाले।
- मन का अशुद्ध सकल्प।
- दूषित विचारो का परिणाम।
- हिसक भाव स्वय के हिसक।
- दूसरो की हानि से पहले स्वय की हानि।
- समीक्षण सहायक—सामायिक।

एगे जिए जिया पंच, पंचजिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणमहै।।

दशवैकालिक सूत्र 32/36

एक आत्मा को जीत लेने पर पॉच इन्द्रिया और चार कषाय भी जीत लिए जाते हैं। इनको जीत लेने पर सभी पर विजय प्राप्त हो जाती है।

मन से विकारो का विस्र्जन भी आत्मिक शक्ति के द्वारा ही होता है। आत्मा जब अपने आपका समीक्षण करने लगती है, तब मन और इन्द्रियो की विकृति भी दूर होती चली जाती है।

आत्मिक शुद्धि के लिये अतरग का मल क्या हे? और उसे केसे दूर किया जाए? समता और समीक्षण का रसपान कैसे किया जाए? इस विषयक वर्णन प्रस्तुत प्रवचन मे किया गया है।

आन्तरिक मल का विसर्जन हो

शान्ति जिन एक मुझ विनति, सुनो त्रिभुवन राय रे।
शान्ति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।

जड तत्वो से निर्मित शरीर के पवित्र स्वरूप को विकसित करने के लिये पवित्र महापुरूषो का स्मरण करना, उनके उपदेश को हृदयगम करना आवश्यक है। समृति जितनी पवित्र बनेगी, उतना ही जीवन पवित्रता की ओर आगे बढेगा। स्मृति को पवित्र बनाने के लिये महापुरूषो के जीवन सस्मरण के साथ ही वीतरागवाणी पर चिन्तन–मनन करना भी आवश्यक है। वीतराग वाणी को श्रवण करने के लिये भाई बहिन अपना अमूल्य समय निकालकर यहॉ उपस्थित होते हैं। लेकिन चिन्तन यह करना है कि जिन्हे हम कान से श्रवण कर रहे है, उनका मनन सही रूप मे हो रहा है या नही। किसी भी वस्तु का जायका लेना है तो वह जिह्वा से लिया जाता है, किन्तु उसे शरीर मे परिणत करने का काम जठराग्नि का होता है। मनुष्य बढिया से बढिया भोजन करे लेकिन उसकी जठराग्नि व्यवस्थित नही है, विकृत है, विषययुक्त तत्त्व से खराब हो गई है, तो उस शरीर मे जाने वाला बढिया अन्न भी विषयुक्त हो जाता है। सन्निपात रोग से ग्रस्त व्यक्ति अमृत तुल्य दूध पीकर भी उसे विष रूप मे परिणत कर देता है।

जिस प्रकार शरीर की प्रक्रिया जठराग्नि के साथ है, वैसे ही जीवन निर्माण की प्रक्रिया मन के साथ है। जीवन निर्माण की जठराग्नि मन है। यदि मन रूपी जठराग्नि मन्द है, रोगग्रस्त है तो समीक्षण की औषधि का सेवन कर उसे स्वस्थ एव तीव्र बनाना चाहिये। मन की पाचन क्रिया पर आई विकृति को समीक्षण रूपी औषध का सेवन करके दूर करना है। मन की जठराग्नि से ही जीवन रस तैयार होगा। वर्तमान जीवन सुखी और समृद्धशाली तभी बन सकेगा, जब जीवन मे वास्तविक रूप से तन्दुरुस्ती आएगी। इस तन्दुरुस्ती को लाने से पहले थोडा समीक्षण कर ले कि मन की जठराग्नि व्यवस्थित है या नहीं।

एकान्त में समीक्षण का प्रयोग हो

पानी मे जब तक तरगे उठती रहती है, तब तक उसके तल मे कोन–सी मूल्यवान् वस्तु है, इसका अवलोकन नही किया जा सकता है। तरगो के समाप्त होने पर तलगत वस्तु का अवलोकन स्पष्ट रूप से हो पाता है। ठीक इसी प्रकार मन मे भी अनगिनत विचारो की तरगे उठ रही हैं। उन तरगो की समाप्ति जब तक नहीं होगी, तब तक आत्म–शक्ति का अवलोकन नहीं किया जा सकता । मन की तरगो को समाप्त करने के लिये एकान्त के क्षण आवश्यक हैं। एकान्त के क्षणो मे मन के उभार को शान्त भी किया जा सकता है तो उसे बढाया भी जा सकता है। मन को समतामय भी बनाया जा सकता है तो विषमता युक्तभी बनाया जा सकता है। लेकिन जब मन को एकान्त के क्षणो मे समता के रग से अनुरजित कर आन्तरिक वृत्तियो का समीक्षण–देखने का प्रयास किया जाता है तो उन एकान्त के क्षणो में विषमता का उभार न होकर शमन होता चला जाता है।

आज के व्यक्ति को एकान्त स्थान बहुत कम मिल पाता है। वह अपने परिवार के बीच रहता है, वहा एकान्तता सम्भवित नही और यदि धर्मस्थान मे भी आ जाए, तो वहाँ भी अनेक व्यक्तियो का समूह होता है। जगल मे भी चला जाए तो पक्षियो की चह–चहाहट गूजती रहती है। वैसे आज के व्यक्तियो का जगल मे जाना सम्भव भी कम है। फिर एकान्तता कहाँ से लाई जाए? वस्तुत एकान्तता से तात्पर्य बाहरी क्षेत्रफल की दृष्टि से जितनी एकान्तता आवश्यक नही है, उससे कई गुनी अधिक एकान्तता अन्तरग के जीवन की आवश्यक है। अन्तरग मे जो राग–द्वेष से सबधित वृत्तियो का उभार आ रहा है, उस उभार से निवृत्त होने के लिये एकान्तता की आवश्यकता है।

मन का कचरा बाहर निकालें

किसी भी रोगी के रोग को दूर करने के लिये वैद्य सबसे पहले उसके पेट की सफाई की ओर ध्यान् देता है क्यो कि जब तक गन्दगी

साफ नही होगी, तब तक औषधपान से भी आरोग्यता की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। ठीक इसी प्रकार आन्तरिक जीवन को स्वच्छ, सुन्दर और निरोग बनाने के लिये उसमे भी रही हुई वासनाओ की गन्दगी को साफ करना होगा। जब तक मन की वृत्तिया, इन्द्रियो के माध्यम से वासनाओ मे प्रवृत्ति करती रहेगी और मन को मलिन बनाती रहेगी, तब तक अतरग जीवन दु ख-द्वन्द्वो मे ही उलझता रहेगा। अत शान्ति पाने के लिये यह आवश्यक है कि मन को मलिन बनाने वाली वासनाओ को हटाया जाए। मन को स्वच्छ निर्मल बना लिया जाए। वासनाओ के उभार को हटाने एव मन की मलिनता को स्वच्छ करने के लिये समीक्षण धारा प्रवाहित करनी होगी। जिस धारा से तन-मन और वचन ही नही आत्मा भी सराबोर होकर पवित्र हो जाए। आत्मा के द्वारा मन मे उठने वाले विचार ही वचन, काया मे परिणत होते है। सबसे पहले आत्मा को जीतने के लिये शास्त्रकारो ने कहा है- 'एगे जिए जिए पच' अर्थात् एक को जीत लेने पर उससे सबधित पॉच इन्द्रिया जीती जा सकती है। उसके साथ ही कषाय भी जीते जा सकते हैं। इस प्रक्रिया मे सुविशुद्ध होता हुआ आत्मस्थ हो जाता है।

मन का अशुद्ध संकल्प

अशुद्ध किवा हिसक सकल्प करने वाले व्यक्तियो के लिये ऐसे सकल्प साधक के स्थान पर बाधक जरूर बन जाते है। समझने के लिये एक छोटा सा रूपक प्रस्तुत कर देता हूँ। एक पुरुष मन मे दूषित वृत्ति को लेकर चल रहा था और सोच रहा था कि अमुक व्यक्ति मेरा शत्रु हे। आज मैं जाऊँ और उस शत्रु को समाप्त कर दूँ। शत्रु को समाप्त करने के लिये मन मे पाप सस्कार जग गये। वे पाप सस्कार अब तक मन की सीमा तक ही थे। जैसे दूध को बर्तन मे रखकर गरम करने की दृष्टि से चुल्हे पर रखा गया, जैसे-जैसे गरमी लगती हे वेसे-वैसे दूध गर्म होता जाता है। दूध गर्म होने पर उसमे उगली डालने पर वह भी जल जाती है। जब दूध मे उफान आने की स्थिति होती है वह बर्तन के मुहँ से बाहर निकलने लगता है। आपने

दूध गरम करने वाले व्यक्ति को देखा होगा। उसकी पहचान यह है कि जब भाप बाहर निकलती है तो वह समझ लेता है कि दूध गरम हो गया– उफान आता है तो पानी के छीटे डालकर उफान को नीचे बेठा देता है। वही परिस्थिति आपके मन रूपी बर्तन की है। पाप सबसे पहले आत्मा के द्वारा मन मे पैदा होता है और जब भावना मे तीव्रता आती है तो वह उसे वाणी से कहने लग जाता है, फिर वाणी तक ही सीमित नही रहता। इतना मन मे पक्का विचार हो गया कि मुझे तो शत्रु को खत्म कर देना है, तब वह काया मे परिणत हो जाता हे। पाप का फल पाप करने से पहले भी मिल सकता है और पाप करने के बाद भविष्य मे भी मिल सकता है और भविष्य मे कुछ साल बाद या भवान्तर मे भी मिल सकता है।

दुश्मन को खत्म करने की भावना तीव्र हुई और वह दुश्मन को मारने के लिये पहुँचता है। उस वक्त उस दुश्मन को भी साकेतिक रूप से ज्ञात हो जाता है कि यह भाई मुझे मारने के लिये आ रहा है।

एक–दूसरे की भावना एक–दूसरे को ज्ञात हो सकती है, यदि व्यक्ति सवेदनशील है तो यन्त्र की आवश्यकता नहीं रहती। टेलीपेथी के अनुसार एक दूसरे के भाव इतने द्रुतगति से जाते हैं कि उन भावो को रोक नही सकते। अत किसी पर भी बुरे विचार करने से पहले वेचारिक सम्प्रेषण पर विचार कर लेना आवश्यक है।

सूर्य की किरणो की गति का नाप वैज्ञानिको ने लिया है। ये किरणे प्रति सेकेण्ड मे एक लाख छियासी हजार मील की दूरी पार करती हैं, लेकिन विचारो की गति, किरणो की गति से भी अधिक या तीव्र या तेज है।

दूषित विचारों का परिणाम

अच्छे विचारो का प्रवाह भी बाहर जाता है तो बुरे विचारो का भी प्रवाह बाहर जाता है। कोई मनुष्य किसी पर घातक वार करने

के लिये मन मे पक्के विचार लेकर चलता है और जिसके लिये उसने बुरे विचार किये हैं, वह व्यक्ति 50 हजार मील की दूरी पर भी क्यो न हो, लेकिन जिस वक्त उस पुरूष ने उसके प्रति बुरे विचार मन मे पैदा किए, उस समय दूरी का विशेष अन्तर नही पडेगा– कुछ ही समय मे उस सामने वाले व्यक्ति के मन मे भी प्रतिक्रिया पैदा हो जाएगी कि अमुक व्यक्ति मुझे मारने के लिये आ रहा है। ऐसे कई उदाहरण आज मनोविज्ञान की दृष्टि से सामने आये हैं। शास्त्रकारो ने इनका बहुत विश्लेषण किया है, बहुत बारीकी से व्याख्या की है।

उस व्यक्ति ने मन मे विचार कर लिया कि अमुक व्यक्ति को मुझे मारना है और वह व्यक्ति उसी समय उठ गया और मकान से बाहर निकला, मध्य रास्ते मे चलने लगा।

दूसरे के मन मे भी यह भावना जगी कि अमुक व्यक्ति मुझे मारने के लिये आ रहा है। वह भी मकान से बाहर निकला। जो उसको मारने के लिये आ रहा था, वह रास्ते मे मिल गया, उस पर उसने ऐसा घातक वार किया कि वह छटपटाकर वही मर गया। भावो की तीव्रता से पाप को कार्य रूप मे परिणत करने से पहले ही, उसको पाप की भावना मात्र करने का दण्ड मिल गया। यदि वह उस व्यक्ति को मार डालता तो सरकार उसको बाद मे दण्ड देती या नही देती किन्तु उसको तो दण्ड मिल गया।

मन की इन वृत्तियो को पुरूष अपने एकान्त क्षणो मे बैठकर देखे और विचार करे कि राग–द्वेष और मोह की दशा कैसे दूर हो सकती है?

हिसंक भाव स्वयं के हिसंक

कभी–कभी ऐसा प्रसग आता है कि पाप करते–करते ही व्यक्ति उसका फल पा लेता है।

एक सिक्ख बस मे बैठा हुआ था। उसी समय उसको एक

खरगोश नजर आया। उसको मारने के लिये उसने छुरा निकाला। खरगोश पर छुरा फैंकने ही वाला था कि सयोग ऐसा हुआ कि छुरा हाथ से छुटकर उसके हाथ पर गिर गया। खरगोश को तो वह नहीं मार पाया लेकिन स्वय को सबक मिल गया।

कभी पाप करने के तुरन्त बाद फल मिलता है तो कभी वर्षो बाद मिल सकता है और कभी–कभी अन्य भवो मे मिलता है।

अभी वर्तमान मे घटित घटना है– मेरठ जिले के दादरी गॉव मे एक पहलवान रहता था। पहलवानी करने के बाद वह दूध पीता था। दूध भी पर्याप्त मात्रा मे पीता था। एक दिन वह दूध खरीद करके लाया और बरतन मे डालकर गर्म करने के लिये उसे सिगडी पर चढा दिया और सोचा कि कसरत करके दूध पी लूँगा। हण्डिया रखकर कसरत करने चला गया। वहॉ पर एक कुतिया थी, जो चुपके से आकर दूध पी गई। पहलवान को मालूम नही पडा। ऐसा ही कार्यक्रम कुछ दिनो तक चलता रहा। उसने सोचा कि कोई मनुष्य तो वहॉ दिखता नहीं है, फिर दूध कौन पी जाता है?

एक दिन उसने कुश्ती को गौण किया और हण्डिया रखकर कोने मे छिप कर बैठ गया। कुतिया को रोजाना का अभ्यास था, उसने दूध पीना चालू किया। पहलवान चट से निकलकर बाहर आया और कमरे मे कुतिया को बन्द कर दिया। कुतिया ने इतने दिनो मे कितना दूध पिया होगा? अधिक से अधिक एक किलो। पर उस पहलवान ने लोहे की सलाक तपाई और कुतिया की ऑखो मे डालकर उसकी ऑखे फोड दी। मनुष्य, मनुष्य तन का दुरूपयोग कैसे करता है और कैसे मन को मलीन बनाता है? यह इस घटना क्रम से स्पष्ट हो जाता है। कुतिया तत्क्षण तो नही मरी लेकिन उसको इतनी वेदना हुई कि थोडे समय बाद वह समाप्त हो गई। पहलवान ने खुशी मना ली कि मैने दूध का बदला ले लिया।

सरकार देख लेती तो कुतिया को मारने का दण्ड दिया जाता या नहीं? मालूम नहीं, ऐसा प्रावधान कानून मे है भी या नहीं? लेकिन

कुदरत की रचना मे देर है, अन्धेर नही। इससे उस पहलवान का इतना कर्मबन्धन हुआ कि वे कर्म बन्धन सप्ताह भर मे उदय मे आ गये। उस भाई की ऑखो मे इतनी शूल चलने लगी, इतनी जलन होने लगी कि सहन करना कठिन हो गया। पहलवान की दोनो ऑखो मे वेदना इतनी तीव्र हुई कि वह कुछ ही समय बाद समाप्त हो गया। यह भविष्य के फल की बात हुई।

दूसरों की हानि से पहले स्वयं की हानि

जिसके मन मे पवित्रता होती है वह मन के सस्कारो को ठीक करता रहता है। यदि व्यक्ति को अच्छा निमित्त मिलता है और उसे कोई मारने की कोशिश करता है, तो उसे नही मार सकता और उसका दड मारने वाला पहले ही पा लेता है।

ऐसी ही एक घटना मेरठ के पास पाचली गॉव मे घटी। दो किसान पॉच मील की दूरी से चलकर बैल खरीदने के लिये पहुँचे। बैलो की जोडी 1200 रूपयो मे तय कर ली। सौदा तय करते—करते घण्टा भर रात्रि व्यतीत हो गई। दोनो व्यक्तियो ने आपस मे विचार किया कि हम दो हजार रूपये लेकर आये है, 1200 रूपये बैलो की जोडी के देने है। बैलो की जोडी और बाकी के रूपये लेकर जगल के रास्ते से जाना है, घण्टा भर रात्रि हो गई है, रात्रि मे जाने मे खतरा है, इसलिए आज की रात्रि यहीं रह जावे और प्रात काल चले जायेगे। जिससे बैल खरीदे थे, उस व्यक्ति से कहा कि आज रात्रि मे हम यही पर रह जाते हैं, कल प्रात काल चले जायेगे। उसने चुपके से सुन लिया था कि इनके पास दो हजार रूपये हैं। उसने कहा की ठीक है, आज रात्रि मे यहीं पर रह जाओ। उनके लिये इतजाम कर दिया। बाहर की पडसाल मे दो खाट डलवा दिये, बिस्तर बिछा दिये, दोनो को सुला दिया।

कृषक भी दो भाई थे। बैलो के खरीददार तो निद्रा के अधीन हो गये। इधर उन दोनो भाईयो के मन मे पाप की भावना जागी। उन्होने सोचा कि प्रात काल होते—होते ये बैलो की जोडी ले जायेगे।

1200 रूपये मे सौदा हुआ है, 1200 रूपये अपने को मिल जायेगे। पर इनके पास मे दो हजार रूपये हैं– अपना मकान गाव के किनारे पर है, अपना खेत भी पास मे है, बस्ती नजदीक मे नही है। रात्रि मे कौन देखने वाला है? इनको रात्रि मे समाप्त कर दिया जाए तो, दो हजार रूपये अपने को मिल जायेगे और बैलो की जोडी भी पास मे रह जाएगी। उन्होने षडयत्र रच लिया। दोनो ने अपनी पत्नियो से कहा कि तुम तैयार रहना, बाहर के यात्री आये हैं, हम जब इशारा करे तब छुरा उनकी गर्दन के पार कर देना। हम गन्ने के खेत मे गड्ढा खोदने जा रहे हैं, उनको उस गड्ढे मे डालकर ऊपर से रेत डाल देगे किसी को पता नही चलेगा। पहले हम गड्ढा तैयार कर ले, तुम छुरा लेकर तैयार रहना, इशारा करे उस समय गर्दन मे छुरा घोप देना।

कहते हैं– जैसे को तैसा मिल जाता है। उनकी पत्निया भी वैसी ही थी। उन्होने कह दिया कि हम तैयार रहेगी, आप गड्ढा खोद लीजिये। दोनो भाई खेत मे गड्ढा खोदने चले गये। उन्होने सोचा कि इस समय यहॉ पर कौन आ सकता है। गड्ढा खोद रहे थे ओर उसी तरह की बाते कर रहे थे।

सयोगवश एक भाई उधर से जा रहा था। उसके कान मे उन भाइयो की बातो की भनक पडी। कान मे शब्द गये तो उसने सोचा कि कोई खतरा है। ये किसी का धन हडपना चाहते है। उसने अनुमान कर लिया कि बाहर के मुसाफिरो को मारने का षडयत्र दिखता है। वह भाई घूमकर उन दोनो व्यक्तियो के पास पहुँचा ओर उनको जगाकर कहा कि जल्दी मेरे साथ चलो। तुम्हारा जीवन खतरे मे है। वे दोनो उठकर तैयार हो गये और उसके साथ चल दिये।

उधर युवा वय के दो पुरूष उस घर मे और आये। वे उसी घर से सबधित थे उन्होने देखा कि आज नाटक देखने मे ज्यादा समय लग गया, लेकिन सोने के लिये सीधे खाट मिल गये, चलो

सो जाओ। दोनो मुँह पर कपडा ओढकर आनन्द से सो गये, जगेरा था, सोते ही उनको नीद आ गई।

रात्रि मे 12 बजे के लगभग गड्ढा खोदकर दोनो भाई आये और पत्नियो को इशारा कर दिया। दोनो स्त्रियाँ छुरा लेकर निकली और दोनो पुरूषो के ऊपर से कपडा उठाये बिना ही दोनो की गर्दन के पार छुरा घोप दिया और दोनो को खत्म कर दिया। खत्म करने के बाद स्त्रियो ने कमीज की जेब टटोली तो जेब मे 2 हजार रूपयो के बजाय बारह आने ही निकले – वे नाटक देखकर आये थे, इतने ही पैसे बचे थे। लेकिन स्त्रियो ने सोचा कि रूपये दूसरे ठिकाने रखे होगे, बाद मे देख लेगे कहाँ जाते हैं? उन दोनो कृषको ने पत्नियो की सहायता से दोनो मृतको की लाशो को गड्ढे मे डालकर मिट्टी डाल दी और खुशी मनाने लगे। दोनो रात्रि मे सो गये। पत्निया भी सो गई।

पाप कितना ही एकान्त मे किया, दुनिया जाने या नही जाने लेकिन उनका मन जानता है, मन उनको चैन नही लेने देता। चारो को रात्रि मे नीद नही आई।

सूर्योदय होने के बाद दोनो भाई कुए पर गये। वहाँ उन्होने देखा कि बैल खरीदने वाले दोनो व्यक्ति कुए पर मुह–हाथ धो रहे हैं। उन्होने सोचा कि यह क्या धोखा हो गया। वे लौटे और जाकर लाशे देखने लगे। तो उन्हे ज्ञात हुआ कि उन दोनो के जवान लडके मारे गये हैं। जब पुलिस को पता चला तो सारे परिवार को गिरफतार करके ले गई।

देखिये तो सही अज्ञान परिपूर्ण जीवन की कैसी दुर्दशा? उनको पता ही नही है कि हमारा जीवन कैसा है, जीवन को सुन्दर बनाने का कैसा कार्यक्रम है? कौनसा विधि विधान है? वीतराग देव के अनुयायी पुण्यशाली हैं। ऐसा आध्यात्मिक उपदेश श्रवण करने को मिल रहा है। आप जीवन की पवित्रता साधने के लिये, जीवन

को तन्दुरुस्त बनाने के लिये अपनी मनरूपी जठराग्नि को देखिये कि इसमे ऐसी पापवासना का मल तो सचित नहीं है? यदि मल का सचय है तो पहले उसको मन से बाहर निकालिये और बाहर निकालने के लिये सभी के प्रति समीक्षण दृष्टि बनाइये। जब विचारो मे समभाव आएगा, तब उच्चारण और आचरण मे भी समभाव पनपेगा। समभाव का विकास ही सच्चा आत्मविकास होगा।

समीक्षण सहायक : सामायिक

समता की साधना के लिये सामायिक एक महत्वपूर्ण अग है। सामायिक की साधना आनन–फानन मे आने वाले खिलौने की तरह नहीं हे बल्कि एक महत्वपूर्ण साधना है, इसको खयाल मे रखिये। आप भाई–बहिन यह चिन्तन कर ले कि 48 मिनट के लिये मुहपत्ति ओर बेठका लगाकर सावद्य योगो का त्याग कर लेगे, माला फेर लेगे, भक्तामर का पाठ कर लेगे, इतने मे 48 मिनिट पूरे हो गये और सामायिक हो गई। उठकर चले गये, लेकिन यह चिन्तन नही किया कि 48 मिनिट के लिये ससार का त्याग किया, दो करण, तीन योग से 18 पापो का त्याग किया, राग–द्वेष आने के कारणो को हटा दिया, यह तो जुलाब लेकर कोठरी मे प्रवेश करके मल का विसर्जन करना हुआ। भक्तामर का नाम लेना अच्छा है लेकिन खयाल करिये कि भक्तामर के श्लोको का अर्थ जिसने जाना है उनके ध्यान मे यह आ जाएगा कि ऐसे भगवान हो गये, यह बात आपके मस्तिष्क मे आ जाएगी। माला फेरेगे तो माला के मणके हाथ से चलाते रहेगे, जिह्वा चलती रहेगी, मन भी चलता रहेगा। उसके इजीनियर ने बटन दबा दिया तो वह घुम रहा है। जबान चलने लगी, नवकार मत्र का उच्चारण शुद्ध है या अशुद्ध है? मन चारो तरफ घूम रहा है। इस समय भी वह समीक्षण का कार्य नही कर रहा हे। कदाचित अच्छी धार्मिक पुस्तक आपके पास आ गई तो पढने लगे। आपका मन उसमे लग गया, श्रुत ज्ञान की उपलब्धि हो रही है। नये–नये विषय आ रहे है किन्तु तात्त्विक विषय समझ मे नही आएगा। परन्तु रूचि हो गई

तो आपका मन उसमे लग जाएगा। मन लगना ठीक है, लेकिन कब लगाना? जिस उद्देश्य से एकान्त कमरे मे गये हैं, पहले वह काम करना या यह काम करना? मैं इसको और स्पष्ट कर दूँ। एक व्यक्ति ने पेट का मल साफ करने के लिये मल त्याग के लिये घर मे प्रवेश कर लिया। दस्त देर से लगती है, वहॉ बैठा–बैठा पुस्तक पढ रहा है। ध्यान करिये मनोविज्ञान की दृष्टि से, कि मन पुस्तक मे लग जाता है, तो दस्त का ध्यान नही रहता है। दस्त की तरफ ध्यान देते हैं तो मल बरबस चला आता है।

मन को पाप रूपी मल से खाली करना है। उसके पश्चात् समता समीक्षण रूपी औषधि की मात्रा लेनी है। सामायिक के कार्यक्रम मे आपका मन डोलता रह गया, भक्तामर मे रह गया तो पुण्यवानी तो बधेगी लेकिन जिस उद्देश्य से सामायिक की साधना मे बैठे है, वह उद्देश्य सिद्ध नही होगा।

सबसे पहले मन के भीतर रहने वाले पापरूपी मल को विसर्जित करना है तो सामायिक मे बैठकर विसर्जित करिये– फिर पवित्र सस्कारो को भरिये। ये पवित्र सस्कार भरेगे कब? जब समता–समीक्षण के सिद्धान्त मे रम जायेगे और तब आपको रस आये बिना नही रहेगा। □□

जीवन का अक्षय निधान

- आर्य जीवन की दुर्लभता
- पुण्यानुबन्धपुण्य साधना मे सहायक
- धर्म आत्मा का निजी स्वरूप
- अक्षय निधि स्वय की
- निज का बोध अनन्त सुख प्रदायक
- भौतिक–निधान : दु ख का परवान
- मूल को समझो और उसे सींचो
- भीतर मे झाको
- अन्त समीक्षण सुख का महापथ
- भौतिक खजाना आध्यात्मिक निधान
- निज रूप का उत्थान उन्नति का परवान

अप्पा कामदुहा धेणु, अप्पा मे नन्दणं वणं।।

उत्तराध्ययन सूत्र 20/36

आत्मा ही काम–दुधा धेनु है, आत्मा ही नन्दन वन है।

परम सुख एव परम शान्ति की प्राप्ति भौतिक तत्त्वो से कभी भी नहीं हो सकती। अक्षय सुख का अक्षय खजाना बाहर नहीं अपितु भीतर मे, जीवन की अनन्त गहराइयो मे विद्यमान हे। उसे पाने के लिये निज का ज्ञान करना होगा और निज के ज्ञान के लिये अन्तर समीक्षण करना होगा। जो एक बार भीतर का खजाना प्राप्त कर लेता है उसे फिर कभी भी हानि नही होती।

प्रस्तुत प्रवचन मे भौतिक निधि को दु ख एव अभोतिक निधि को सुख का परवान बतलाकर अतीव सुन्दर समझाइस की गई हे।

धर्म जिनेश्वर गाऊ रगशु,
भग न पडशे हो प्रीत ।।
परम निधान प्रगटे मुख आगले
जगत उल्लगी हो जाए।। जिने ।।

चार गति चौरासी लाख जीव योनियो मे सर्वोत्तम मानव जीवन देवो के लिए भी दुर्लभ है। मानव के लिए देवलोक मे देव बन जाना जितना कठिन नही है, उससे कई गुणा कठिन मानव से पुन मानव जीवन प्राप्त करना है। यह एक आपेक्षिक दृष्टिकोण है। एक बार मानव जीवन प्राप्त कर लिया जाए तो आर्य कुल और सुश्रद्धा मिलना और भी कठिन है। आज आप देखिये, मानव के शरीर को लेकर चलने वाले मानव तो करोडो, अरबो की सख्या मे दुनिया भर मे विद्यमान हैं, लेकिन उनमे आर्यत्व की स्थिति परिलक्षित नहीवत् होती है।

आर्य जीवन की दुर्लभता

अरबो की जनसख्या मे प्रभु द्वारा प्रवचित आर्य सस्कृति को लेकर चलने वाले मानव तो नगण्य ही मिलेगे। सर्वत्र हिसा, झूठ, चोरी, अश्लील आचरण एव धन–दौलत, वैभव–विलास का ही बोलबाला नजर आता है। मास–मदिरा का व्यापक प्रचार हो रहा है। जहा विदेशो मे तो प्राय लोग इनका सेवन करने लगे हैं, वहा भारत मे बहुत से लोग इन चीजो से अछूते नही है। अण्डे जैसी मासाहारी वस्तु को भी शाकाहारी रूप मे प्रचारित कर उनका सेवन किया जा रहा है। स्वय के तुच्छ स्वार्थ के पीछे एक–दूसरे की हिसा कर देना, लूट लेना आज के युग मे एक साधारण–सी बात हो गई है। ऐसी स्थिति मे आर्यत्व की स्थिति मिलना अत्यन्त दुर्लभ हो जाता है। इसलिए महाप्रभु ने यह स्पष्ट कहा है–

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो।
माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरिय।।

पुण्यानुबंध पुण्य : साधना में सहायक

प्रथम तो आर्य कुल मिलना ही दुर्लभ है। कदाचित् आर्य कुल मिल भी जाए तो सर्वांग परिपूर्णता, वीतराग धर्म का श्रवण, उस पर अगाध श्रद्धा और तद्नुसार क्रियान्वयन एक के बाद एक दुर्लभता से प्राप्त होते हैं। इसके लिए अनन्त पुण्यवानी का अर्जन होना आवश्यक होता है। मैं समझता हूँ आप लोग अत्यन्त पुण्यशाली हैं इसलिये मानव जीवन, आर्य कुल और धर्म का श्रवण करने को मिल रहा है। किन्तु इस पर श्रद्धा और पराक्रम कौन कितना कर रहा है? इसके लिये अपने–अपने घर मे विचार करने पर ही ज्ञात हो सकेगा। पुण्य का अर्जन तो फिर भी हो सकता है किन्तु पुण्यानुबधी पुण्य का अर्जन अत्यन्त कठिन है। जो पुण्यानुबधी पुण्य का बन्धन करके भवान्तर मे गमन करता है, वह जीव आने वाले भव मे धन ऐश्वर्य की प्राप्ति के बाद भी अध्यात्म–साधना के महापथ पर बढ जाता है।

धर्म : आत्मा का निजी स्वरूप

धर्म मनुष्य का जीवन ही नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर रहने वाली वाली आत्मा का निज स्वरूप है। जब तक एक आत्मा शरीर में है, तब तक वह शरीर का धर्म बना हुआ है। शरीर धर्म की स्थिरता शरीर मे रहने वाली आत्मा से सुस्थिर है। जीवन भी तभी कहलाता है जब आत्मा शरीर मे विद्यमान हो। जब शरीर मे से आत्मा निकल जाती है, तब कोई भी व्यक्ति, केवल पिण्डात्मक शरीर को जीवन नही कहता। बल्कि लोग इस शरीर को मुर्दा कहकर इसे जलाने या दफनाने की चेष्टा करते हैं। अत धर्म का आधार स्वय की आत्मा है और आत्मा का मौलिक गुण धर्म है। दोनो मे गुण–गुणी भाव से सबध रहा हुआ है। जब आत्मा के गुण धर्म का परिपुर्ण विकास होता है तब आत्मा अमन–शान्ति की अनुभूति करने लगती है। इस अमन–शाति की अनुभूति भी तभी होती है, जब वह अपने निज स्वरूप का ज्ञान कर पाती है। अपने आपको समझे बिना स्व–सत्ता का विकास नहीं हो सकता। विषय को सुबोधगम्य बनाने के लिये एक रूपक सुना देता हूँ।

अक्षय निधि स्वयं की

कोई दस बारह वर्ष का बच्चा, घर–घर मे भीख मागता हुआ इधर–उधर घूम रहा था। सामने एक सामुद्रिक लक्षणो का ज्ञात् विद्धान आ रहा था। उसने जब इस बच्चे को देखा और साथ ही उसके चेहरे पर उभर रहे लक्षणो पर उसकी दृष्टि पडी तो विस्मय मे पड गया। विचार करने लगा– अहो! इसके शरीर के लक्षण तो यह बतला रहे हैं कि यह करोडो का मालिक है, किन्तु प्रत्यक्ष मे तो यह भीख माग रहा है। क्या सामुद्रिक शास्त्र गलत है? नहीं नही। ऐसा तो कभी नही हो सकता। आज तक जितने भी लक्षण मैंने देखे है, वे सही निकले हैं, फिर यह क्या रहस्य है? विद्धान ने बच्चे को अपने पास बुलाया और उससे कहा कि तेरे चेहरे को देखते हुए ऐसा लगता है कि तुम करोडो के मालिक हो, किन्तु मै देख रहा हूँ कि तुम भीख माग रहे हो। यह कैसे, क्या बात है? बच्चे ने कहा– विद्वान् महाशय ! आप मुझ बच्चे की मजाक क्यो उडाते है। करोडो रूपयो की बात तो जाने दीजिये, मेरे पास दो जून खाने के लिये भोजन भी नहीं है। विद्धान महाशय ने कहा– नही बच्चे, मैं तुम्हारी मजाक नहीं उडा रहा हूँ, बल्कि सत्य कह रहा हूँ तब बच्चा कुछ गम्भीर होकर बोला– आपका कहना आज नही, तब सत्य था, जब तक मेरे माता–पिता थे। उस समय मेरे पिता के पास करोडो की सम्पत्ति थी लेकिन पिता के अचानक स्वर्गस्थ हो जाने से व्यापारिक सम्पत्ति मुनीमो आदि ने दबा ली, घर खर्च के लिए माता ने घर मे रही हुई सम्पत्ति भी खर्च दी। कुछ समय बाद माता का स्वर्गवास भी हो गया। कर्जदारो ने मकान बेचकर अपना–अपना कर्ज अदा कर लिया और मुझे घर से वाहर निकाल दिया। तब से मैं घर–घर जाकर भीख मागकर पेट भरता हूँ। अव इस समय तो मेरे पास फूटी कोडी भी नही है।

विद्वान् महाशय ने सोचा– यह नहीं हो सकता। इसके पास अभी भी कम से कम एक करोड की सम्पत्ति है। लेकिन है कहाँ? उन्होने ध्यान से उसके शरीर का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया तो उन्हे

उसके गले मे बधा हुआ एक डोरा दिखलाई दिया। डोरा देखकर वे बोले – बच्चे जरा यह डोरा हमे दिखलाओ।

तब बच्चा बोलता है– नहीं, नही यह तो मैं नही खोल सकता। क्योकि मेरे पिता ने बचपन मे ही मेरे गले मे बाध दिया था और कहा था कि इसे कभी मत खोलना, तभी से यह मेरे गले मे है।

विद्वान् महाशय विचार करने लगे कि गले मे यह डोरा तो तन्त्र से सबधित लगता है और इसके नीचे मादलिया भी लटका हुआ है। किन्तु इसके पिता ने यह कैसे बाधा? अगर बाधता तो कोई तन्त्र–ज्ञाता ही बाधता। जरूर इसमे कोई रहस्य होना चाहिये।

विद्वान् महाशय बच्चे को अपने विश्वास मे लेकर वह डोरा उसके गले मे से निकाल कर उसे इधर–उधर देखने लगे। फिर जो मादलिया था उसे खोलने लगे। उस पर कपडे के पर्त लगे हुए थे, एक के बाद एक पर्त उखाडते–उखाडते चार पर्त खोलने के बाद लोहे की डिबिया निकली, उसे खोलने पर क्रमश पीतल, चॉदी और सोने की डिबिया निकली। जब सोने की डिबिया को खोला तो उसमे जगमग–जगमग करता हीरा चमक उठा। वह हीरा सवा करोड रूपये की कीमत का था। जिसे देखते ही सामुद्रिक शास्त्री जी पुलकित हो उठे। अरे वाह । वास्तव मे यह बच्चा करोडपति है, मेरे सामुद्रिक शास्त्र ने सब कुछ सच–सच बतला दिया।

विद्वान् महाशय ने उस बच्चे को वह हीरा देते हुए कहा कि लो, यह सवा करोड का हीरा। मैंने तुम्हे कहा था कि मेरा सामुद्रिक शास्त्र कहता है कि तुम करोडपति हो। देख लो तुम्हारे पास सवा करोड का हीरा है।

विद्वान् महाशय की बात सुनकर बच्चा पुलकित हो गया। उसने बहुत– बहुत उपकार माना और इन्हीं की सहायता से पुन अपना मकान खरीद लिया। पढ लिखकर व्यापार प्रारम्भ किया तो पुन करोडो का मालिक बन गया।

निज का बोध : अनन्त सुख प्रदायक

बन्धुओ ! यह तो एक रूपक है। जो यह सकेत देता है कि जब तक उस बच्चे को खुद की सम्पत्ति का ज्ञान नहीं था, तब तक वह भीखारी बना रहा किन्तु जब उसे अपनी सम्पत्ति का ज्ञान हो गया तो वह करोडो का मालिक बन बैठा। वैसे ही जब तक आत्मा का ज्ञान नही होता तब तक आत्मा भी इस ससार मे भिखारी की तरह इधर से उधर भटकती रहती है। जब आत्मा को अपने निज स्वरूप का भान होता है और वह उसे पाने के लिये प्रयत्नशील बनती है तो उस आत्मा मे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, और अनन्त शक्ति प्रकट हो जाती है। वह शाश्वत सुख का मालिक बन जाती है। करोड़पति तो एक दिन फिर कगाल बन सकता है, किन्तु जो आत्मा एक बार घनघातिक कर्मो का सर्वथा क्षय कर डालती है, वह फिर ससार के प्रपचो मे नहीं उलझती ।

भौतिक निधान : दुःख का परवान

दुनिया के लोग भौतिक धन को निधान समझते हैं। जहा कहीं जमीन मे धन गडा हुआ हो तो वे उसे पाने की कामना करते है। इसी प्रकार की कामना करते हुए लोग बाहरी धन की खोज करते रहते हैं और सोचते हैं कि मै उससे परम शान्ति और परम सुख का अनुभव करूगा। किन्तु ज्ञानी जन यह कहते हैं कि वह तो काल्पनिक सुख है, स्वप्निल सुख है। जब तक व्यक्ति स्वप्न देखता है, तब तक सुख की अनुभूति होती रहती है, किन्तु ज्यो ही स्वप्न पूर्ण होता है तो वह पुन स्वाभाविक स्थिति मे आ जाता है।

एक–एक दाने के मोहताज भिखारी को स्वप्न मे राजसी ठाठ–बाट मिल जाते है, वह उसमे खूब सुख की अनुभूति करता है, किन्तु ज्योही निद्रा भग होती है, त्योही मिट्टी के महल की तरह उसका सुख छिन्न–भिन्न हो जाता है। भैतिक धन मे वास्तविक सुख की अनुभति नही हो सकती है। सच्ची निधि वह होती है, जिसके

उपलब्ध होने पर उसका स्वामी कभी निर्धन न हो, सच्चा सुख वह है जिसे पाने के बाद वह कभी भी दुखी न हो। ऐसी निधि आत्मा की निजी समृद्धि के रूप मे वह शक्ति है, जिसको आप दूसरे शब्दो मे धर्म कह सकते है। वह निधि सभी मानवो के सामने है परन्तु उसकी ओर हम ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। एक अन्धे व्यक्ति की तरह उसे छोडकर आगे बढते जा रहे हैं।

जो व्यक्ति विवेकशील नही होता, उस व्यक्ति के सामने क्यो न ससार भर की ऋद्धि भी पडी रहे, परन्तु वह उसे भी छोडकर निकल जाता है। वह उसे नही पाएगा, क्योकि उसे विवेक नही है। ऐसा व्यक्ति चिन्तामणि रत्न को भी ठोकर मारकर निकल जाएगा, क्योकि वह उसे नहीं जानता है। ऐसे व्यक्तियो के ऑखे होते हुए भी ज्ञानीजन उन्हे अन्धे की उपमा देते हैं। कवि ने कुछ ऐसा ही सकेत दिया है–

परम निधान प्रगटे मुख आगले

कविता की भाषा उन्नीसवीं शताब्दी की है। उसमे स्पष्ट बतलाया है कि परम निधान, श्रेष्ट निधान, श्रेष्ट खजाना सामने है, प्रकट है, परन्तु जगत् उसको लाघकर चल रहा है। जगत् का ध्यान उस परम निधान की ओर नही है, वह नाशवान निधान की ओर दौड रहा है।

मूल को समझो और उसे सींचो

फल पाने की इच्छा से कोई वृक्ष को ही काट रहा है, वह यह नहीं सोच पा रहा है कि यदि वृक्ष कट गया तो फल कहॉ से मिलेगे ? जो ऊपर फल दिख रहे हैं, पत्ते दिख रहे हैं, हरियाली दिख रही है, वह इसी वृक्ष से आ रही है। मूल खजाना उसकी जड मे है, जो जमीन में गडी हुई है। जमीन के हिस्से की उपेक्षा करके वह फल–फूल पत्तो को लेने का प्रयास कर रहा है। ऐसा व्यक्ति नहीं सकता। फलादि को चाहने वाला व्यक्ति वृक्ष के मूल नहीं कर सकता।

ज्ञानीजनो ने इस रूपक को ससारी लोगो के साथ उपमित किया है। मनुष्य जीवन की हरियाली जो हमे दिख रही है, किन्तु आप सोचिए कि यह हरियाली तो बाहर मे दिख रही है। तो बन्धुओ । जिस प्रकार वनस्पति की हरियाली हरी–भरी और मनोरम दिखलाई देती है, उसी प्रकार मानव जीवन की बाहरी हरियाली है– बोलना, चलना, हॅसना आदि। यह सब हरियाली मनुष्य की बाहरी पहचान है। किन्तु यह पहचान है किसके आधार पर ? क्या इसका आधार शरीर है ? हॅसना, बोलना, अच्छी बाते करना, अच्छा व्यवहार करना या उल्टा व्यवहार करना, ये इस शरीर के कार्य नहीं हैं, शरीर तो बेचारा अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है। परन्तु इस शरीर मे रहने वाली जो आत्मा है, उस आत्मा की ही ये सारी प्रक्रियाए हैं। आत्मा जब यह समझती है कि यह अच्छा है, तो वह अपनी अच्छाई प्रकट करने के लिये मुह को आज्ञा देती है कि तुम खुश हो जाओ तो वह खुश हो जाता है। यदि उसे कोई कार्य अच्छा प्रतीत नही होता है तो क्यो न वह मुख से न बोले, किन्तु यह बात उसके चेहरे को उदास बना देती है। कुछ और व्यावहारिक बात बतला दूँ– जब आपकी आत्मा को लगता है कि महाराज साहब के व्याख्यान सुनने जाना है तो उसी वक्त पैरो को आर्डर दिया नही कि वे चलने लगते हैं बाजार मे चाहे कितना ही ट्रेफिक हो, किन्तु उन सब के बीच मे भी शरीर को बचाती हुई आत्मा शरीर को लेकर सुरक्षित रूप से धर्मस्थान पर पहूॅच जाती है। कार चलाने वाला ड्रायवर सैकडो–हजारो मील की यात्रा करके भी कार को अखडिण्त रख लेता है। ड्रायवर को भी यह ज्ञान कराने वाली आत्मा ही है। अत स्पष्ट है कि शरीर से होने वाली तमाम प्रक्रियाए आत्मा से ही होती है। अत मनुष्य के बाहरी जीवन की दिखने वाली हरियाली का मूल आधार भी आत्मा ही है।

भीतर में झांको

जव मनुष्य आत्मा को ध्यान मे रखता है और आत्मा की शक्ति को पाने का प्रयास करता है तव वह शरीर को आज्ञा देता है कि तू

आत्मा की खोज कर, नेत्रो को आज्ञा देता है कि तू बाहरी निधि को क्या देखती है ? अन्दर की निधि को देख, अन्दर मे झाक।

जब ये नेत्र अन्दर मे मुडते है, चमडे की ऑखे नहीं, अपितु ऑखो के भीतर मे रहने वाली ज्योति रूप शक्ति, जब भीतर मे झाकने का प्रयास करती है, तब वह भीतरी अक्षय निधि आत्मा को देखने मे समर्थ हो जाती है। बाहरी चर्म चक्षु भी देखने मे तभी समर्थ होते है, जब आन्तरिक ज्योति उनके साथ सयुक्त होती है। अभी आप मुझको देख रहे हें या नहीं देख रहे हैं ? यदि आपका ध्यान दूसरी ओर है तो आप न मुझे देख पाएगे और ना ही मेरी बात सुन सकेगे। क्योकि बाहरी ऑखे ओर कान आन्तरिक ज्योति के माध्यम से ही देख–सुन पाते हैं। अन्तरग की ज्योति साथ नहीं देती तो ये ऑखे भी देखने मे समर्थ नहीं होतीं। अत चर्म चक्षुओ को बन्द करके ज्योति स्वरूप आन्तरिक नेत्रो से देखने का प्रयास कीजिए। उनके साथ चर्म चक्षुओ को मत जोडिये। क्योकि चर्म–चक्षुओ के साथ रहने पर वाह्य पदार्थ ही दृश्यमान होगे, उससे आन्तरिक अक्षय निधि परिलक्षित नहीं हो सकती। हीरे की सूक्ष्मता का ज्ञान करने के लिये जिस प्रकार सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की आवश्यकता होती ह, उसी प्रकार आन्तरिक जीवन शक्ति को देखने, जानने ओर पाने के लिये, ज्योति स्वरूप शक्ति की आवश्यकता होती हे।

अन्तः समीक्षण : सुख का महापथ

जब आप अन्दर मे झाकने के अभ्यासी हो जाएगे, जीवन के अन्तरग का समीक्षण करने लगेंगे तो वहाँ आपको अक्षय सुख का मूल स्रोत, अपूर्व खजाना इतना मिलेगा कि आप बटोरते–बटोरते थक जाएँगे फिर भी पूरा बटोर नहीं पाएँगे। आपको उसको देखकर एक सुखद आश्चर्य होगा। 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे भी बतलाया गया है—

'अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं'

इससे जो चाहे सो मिलता है। अनन्त सुख का स्रोत भी इसी से फूटता है। ऐसा सुख आपको प्राप्त हो जाने पर इन बाहरी वस्तुओ को देखने का आपका मन ही नहीं होगा। आप बैठे–बैठे भीतरी निधि को ही देखने का प्रयास करेगे। लेकिन यह सब होगा कब? जब आप पुरूषार्थ करके अन्दर जाने की कोशिश करेगे, तभी यह सम्भव हो सकता है।

भौतिक खजाना : आध्यात्मिक निधान

जमीन मे गडे धन को निकालने के लिये भी पहले खड्डा खोदेगे, मेहनत करेगे, तब कही जाकर वह मिलेगा। ऐसा गड्ढा आप मजदूरो से नही खुदवाएगे। कदाचित कोई ज्ञानीजन या भूगर्भवेत्ता आ जाए और वह यह कहे कि मुझे अपने भूगर्भज्ञान से यह महसूस हो रहा है कि इस हवेली के बीच मे धन के चरू गडे हुए पडे हैं और आपको पूरा विश्वास हो जाए कि धन के चरू गडे है, तब आप उन्हे निकालने के लिये क्या करेगे? क्या उसे खोदने के लिये मजदूरो को बुलाएगे या दरवाजा बन्द करके ऐसे श्रमसाध्य काम को स्वय ही करने लग जाएँगे? जिन्दगी मे कभी कुदाली चलाने की बात तो दूर, कभी उठाई भी नही होगी तो भी आप दरवाजा बद करके किसी भी मजदूर को न वुलाकर खुद ही जमीन को खोद डालेगे और धन को अपने कब्जे मे कर लेगे। क्योकि आप यह जानते है कि यदि मजदूरो को बुलाया और उन्हे धन का ज्ञान हो गया तो फिर वह धन अपने पास नही रह सकेगा।

ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक सुख की अक्षय निधि आपके भीतर भरी पडी हे, उसे वतलाने के लिये साधु तो निमित्त मात्र है। परन्तु परिश्रम तो आपको ही करना होगा। पहली वार जब अन्दर झाकने का, समीक्षण करने का प्रयास करेगे तो घबरा भी सकते हे किन्तु साहस के साथ आगे वढने का प्रयास किया जाये। जैसे वाहरी धन को पाने के लिये दरवाजे वन्द किये जाते हे, वैसे ही इस आध्यात्मिक धन को पाने के लिये भी दरवाजे वन्द करने होगे। वे

दरवाजे कान, नाक, ऑख, रसना और स्पर्श के है। इन दरवाजो को बन्द करके जिसने भी समीक्षण के माध्यम से भीतरी अक्षय निधि को समझ लिया है, देख लिया है, तो वह किसी भी क्षेत्र मे क्यो न हो, सदा निश्चित रहेगा ओर समझेगा कि मेरे पास खजाना है। बाहर की पूजी भले ही हाथ से निकल जाए किन्तु आत्मिक शक्ति रूप पूजी सदा उसे सुखी बनाए रखेगी। ऐसे व्यक्ति के पास बाहरी पूजी परछाई की तरह स्वत दौडती हुई चली आएगी।

निज स्वरूप का उत्थान : उन्नति का परवान

निज स्वरूप का बोध होने पर आध्यात्मिक श्री के साथ ही भौतिक श्री की समृद्धि मे भी अभिवृद्धि किस प्रकार होती है, इसके लिये मैं एक उदाहरण सुना देता हूँ। उनपुर मे धर्मपाल नामक एक श्रेष्ठी निवास करता था। नाम के अनुरूप ही उसके जीवन मे धर्म के सस्कार रमे हुए थे। धर्मपाल सदा यह सोचता रहता है कि मैने जो बाहर की सम्पत्ति और वैभव पाया है और पा रहा हूँ वह सारा का सारा आध्यात्मिक जीवन–धर्म का ही प्रभाव है। इसलिये मुझे धर्म के प्रति श्रद्धा रखते हुए ज्ञानपूर्वक, धार्मिक आचरण करते रहना चाहिये। धर्मपाल चौबीस घटे मे एक घटा तो पूर्ण रूप से आध्यात्मिक साधना मे व्यतीत करता था। श्रेष्ठी के चार पुत्र थे– धनपाल, श्रीपाल, गोपाल और मुद्रापाल। श्रेष्ठी अपने पुत्रो को भी सदा यही शिक्षा देता रहता था कि तुम भी धर्म ध्यान करो। आध्यात्मिक जीवन को सीचो। भौतिक जीवन का मूल भी आध्यात्मिक जीवन है। उसे सीचने पर भौतिक जीवन–स्वत सज–सवर जाएगा। पितृ आज्ञानुसार पुत्र भी धर्म के प्रति निष्ठा रखने लगे। वे भी एक घटे तक धर्म साधना करने के बाद ही व्यापार–धन्धे मे लगते थे।

जब तक पिताजी थे, तब तक यह सब कुछ चलता रहा किन्तु पिता श्री के स्वर्गस्थ हो जाने के बाद कुछ दिन तक तो धर्मध्यान की प्रवृति रही किन्तु बाद मे यह प्रवृति प्रतिदिन कम होने लगी। तीनो बडे भाईयो के मन मे धर्म की रूचि निरन्तर कम होने

लगी किन्तु चौथा भाई मुद्रापाल, जिसके मन मे पिता की हित शिक्षा जीवन की गहराइयो तक उतर चुकी थी, धर्म –साधना के प्रति उसकी रूचि कम होने के बजाए और भी अधिक बढती चली गई। व्यापार मे, व्यवहार मे, जीवन के हर आचरण मे उसके धर्म टपकने लगा। मुद्रापाल ने यह बहुत अच्छी तरह समझ लिया था कि मै आध्यात्मिक निधि को सुरक्षित रखूँगा तो ही सुरक्षित रह सकूँगा।

तीनो भाई धर्म का आचरण किये बिना ही दुकान पर जाकर बैठने लगे, व्यापार धन्धा करने लगे। आखिर बिना मूल सीचे वृक्ष कब तक हरा रहने वाला था ? व्यापार मे निरन्तर घाटा रहने लगा। हर महीने लाखो का नुकसान होने लगा। करोडो की सम्पत्ति दिन–प्रतिदिन समाप्त होने लगी। सच कहा है–

धर्म घटता धन घटे, धन घटता मन घटे।
मन घटता मनसा घटे, घटत घटत घट जाय।।

जब व्यक्ति धर्मका आचरण छोड दता है तो उसकी बाह्य श्री मे भी निरन्तर ह्रास होने लग जाता है। इन तीनो भाइयो का भी यही हाल हुआ। फिर भी उन्होने आन्तरिक निधि की सुरक्षा की ओर ध्यान नही दिया बल्कि यो सोचने लगे कि अब जब सम्पत्ति का बटवारा होगा तो चार विभाग होगे, मुद्रापाल को एक हिस्सा देना होगा। क्या ही अच्छा हो इसे यो ही घर से बाहर निकाल दिया जाए क्यो कि यह तो भोला–भाला है, इसका एक हिस्सा भी अपने को मिल जाएगा।

देखिए भाईयो कि कुटनीति। अपने सगे भाई के प्रति कितना दुर्भावनापूर्ण व्यवहार? जब व्यक्ति के मन मे स्वार्थ का जघन्य कर्म उतरने लगता है तो वहॉ भाई बहिन, माता पिता सभी रिश्ते कच्चे सूत की भाति टूट जाते हैं। वहॉ केवल अपने स्वार्थ को पूर्ण करना ही अवशेष रह जाता है। लोभ और स्वार्थ की निम्नवृत्ति मानव से कौनसा जघन्य कर्म नही करवा डालती? तुच्छ स्वार्थो के

पीछे मानव क्या नही कर डालता है?

जब भाइयो ने आध्यात्मिक जीवन को सींचना ही बन्द कर दिया तो उनका भौतिक जीवन भी क्षत–विक्षत होने लगा और उनका जीवन स्तर इतना अधिक गिर गया कि मानवता और पारिवारिक स्थिति से भी गिरकर जघन्य कार्य करने के लिये तत्पर हो गए।

एक दिन तीनो भाईयो ने मिलकर मुद्रापाल को कह दिया कि आखिर तुम करते क्या हो? मुख वस्त्रिका बाधकर बैठ जाते हो, दिन भर धर्म–कर्म की रट लगाए रहते हो। इससे कुछ मिलने वाला नहीं। आखिर तुम कमाते क्या हो? हम कब तक तुम्हे कमा–कमा कर खिलाएगे? जाओ यहॉ से और कमा के खाओ। भाइयो की यह तीखी और हृदयबेधक बाते सुनकर भी मुद्रापाल घबराया नहीं और सोचने लगा, आज इनकी मति फिर गई है। ये धर्म–कर्म को छोड बैठे हैं, इसलिये यह सब कुछ हो रहा है। मुद्रापाल ने विनम्र होकर पिता की सम्पत्ति का एक हिस्सा, जो उसके हिस्से मे आता था, उसे देने के लिये कहा तो बोल उठे वह सब तो तुम्हारे इस प्रकार बैठे–बैठे खाने मे खर्च हो गया है, अब तुम्हे देने के लिये हमारे पास कुछ भी नहीं है।

आध्यात्मिक निधान का मालिक मुद्रापाल बिना घबराए हुए आकुलता–व्याकुलता या अपने भाइयो के प्रति अन्य विचार लाए बिना ही वहॉ से निकल गया और दूसरे गॉव मे पहूँचा।

रहने के लिये उसके पास कोई मकान तो था नही और न ही कोई रिश्तेदार ही थे, जिससे कि वह वहॉ जाकर ठहर जाता। रिश्तेदार भी हो तो ऐसी हालत मे रखने के लिये तैयार नही होते। पैसे वालो के तो सभी साथी होते है, गरीब का कोई नहीं होता।

मुद्रापाल धर्मशाला मे पहुँचा। प्राचीन युग मे गरीबो, असहायो के लिए ठहरने के लिए नि शुल्क धर्मशालाएँ होती थी जिनमे रहकर वे अपनी जीवन–यात्रा का निर्वहन कर सकते थे। मुद्रापाल भी

धर्मशाला के एक कमरे मे ठहर गया और प्रतिदिन मजदूरी करके पेट भरने लगा। इतना होने पर भी उसने धर्म करना नही छोडा। धर्माचरण, आध्यात्मिक खजाने की अभिवृद्धि मे वह कभी भी प्रमाद का सेवन नही करता। ऐसी स्थिति मे भी उसके मन मे धर्म के प्रति अश्रद्धा, अरूचि के भाव जागृत नही हुए।

एक दिन रात्रि के समय मूसलाधार वर्षा होने लगी। तूफान इतना भयकर उठा कि बडे-बडे मकान भी खडहर मे बदलने लगे। विशाल वृक्ष जड मूल से उखडने लगे। ऐसी स्थिति मे अनेक भाई अपनी रक्षा के लिये धर्मशाला मे एकत्रित हो गए। कुछ ही समय के बाद एक ओर से किसी की चित्कार-चिल्लाने की आवाज आने लगी, लेकिन उस ओर किसी ने ध्यान नही दिया

मानवता के पुजारी मुद्रापाल ने उन लोगो को सचेत किया कि अरे, आपके गॉव मे यह क्या हो रहा है? कोई व्यक्ति मर रहा है। आप बचाने के लिये क्यो नही प्रयत्न करते। लेकिन स्वार्थ मे अन्धे किसी ने भी उसकी बात नही सुनी। मुद्रापाल से रहा नहीं गया और वह अकेला ही उस आवाज की दिशा मे चला गया। उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि पानी से तर दो कन्याऍ एक बहुत बडे वृक्ष के टूट जाने से दब गई है। उसने साहस के साथ वृक्ष को हटाया और दोनो कन्याओ को साथ लेकर धर्मशाला मे आया। बरसात तेज होने से वह भीग चुका था। लेकिन उसने अपनी परवाह नही की और कन्याओ को कम्बल ओढाई एव उनकी सुरक्षा की। धर्मशाला के सभी लोग उसके इस सत्-साहस की प्रशसा करने लगे। बरसात का जोर कम होते ही उन दोनो कन्याओ के पिता के अनुचर इधर, उधर ढूँढते-ढूँढते इस धर्मशाला मे पहुँचे और उन दोनो को यहॉ सुरक्षित देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और जाकर स्वामी को सूचित किया।

कन्याओ का पिता दौडता हुआ आया और अपनी बेटियो को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। जब उसे सारी हकीकत का पता चला तो श्रेष्ठी, मुद्रापाल की तरफ कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखने लगा और

उसका बहुत उपकार मानने लगा। मुद्रापाल ने कहा– अरे सेठजी ! इसमे उपकार की क्या बात है? यह तो मेरा कर्त्तव्य था। यदि हम मानव–मानव की रक्षा नहीं करेगे तो हम मे और पशु मे अन्तर ही क्या रहेगा? सेठ उसकी महानता से अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसे भी आग्रह करके अपनी हवेली ले गया। उसकी सारी जानकारी पाकर अपनी बडी कन्या का विवाह उससे करने को उत्सुक हो उठा। उसने अपनी कन्या के सामने जब यह विचार रखे तो वह भी बोल उठी– पिताजी, आपने तो मेरे मन की बात कह दी।

फिर क्या था? श्रेष्ठी ने अपने विचार मुद्रापाल के समक्ष रखे। लेकिन मुद्रापाल अपनी गरीबी और श्रेष्ठी के ऐश्वर्य की तुलना करते हुए इस बात के लिए तैयार नहीं हुआ, तो सेठ ने उसे अत्यन्त आग्रह एव समझा–बुझाकर तैयार कर लिया। जिसके पास आध्यात्मिक तथा मानवता का अटूट खजाना हो, उसके लिये बाहरी धन कोई महत्त्व नहीं रखता।

आखिर मुद्रापाल का विवाह हो गया। श्रेष्ठी उसे अपने घर पर ही रखना चाहता था। लेकिन मुद्रापाल इसके लिए तैयार नहीं हुआ। वह अपनी पत्नी को लेकर अलग रहने लगा। मुद्रापाल की पत्नी को हीरे का धन्धा करना आता था। उसने अपने पति मुद्रापाल को वह धन्धा और हीरे की परख सिखा दी, फिर क्या था? इधर हीरे का व्यापार चला और उधर मुद्रापाल के पुण्य ने साथ दिया। थोडे ही समय मे उसने करोडो की सम्पत्ति कमा ली।

कुछ दिनो बाद वह सम्पत्ति लेकर अपने शहर मे आकर एक बहुत बडी हवेली खरीदकर बडे आराम से रहने लगा, सच कहा है–

धर्म बढता धन बढे, धन बढता मन बढे।
मन बढता मनसा बढे, बढत बढत बढ जाय।।

इधर उन तीनो भाइयो ने धर्म को छोडा, तो उनके अन्तर का खजाना समाप्त हो गया– परिणामस्वरूप बाहरी जीवन मे भी दु ख के

बादल मडराने लगे।

वे खाने–पीने के लिए भी मोहताज हो गए। उन्होने इस नये सेठ का नाम सुना तो वे उसके पास मजदूरी के लिए पहूँचे। ये तीनो भाई तो नही पहचान पाए लेकिन मुद्रापाल उन्हे पहचान गया, और बोला अरे, आपकी यह स्थिति कैसे हो गई? फिर क्या था– तीनो भाई अपने छोटे भाई को पहचान गए और अपने कृत्य पर पश्चाताप करके उससे माफी मागने लगे।

मुद्रापाल ऐसी हालत मे भी तीनो भाइयो के चरणो मे पडा और उन्हे सान्त्वना दी। सबको अपने पास रख लिया और बोला– मेरे ज्येष्ठ भ्राताओ ! मेरी सम्पत्ति आपकी सम्पत्ति है, आप निश्चित होकर यहाँ विराजिए। लेकिन मैं एक बात बतला दूँ कि पिताजी ने जो शिक्षा दी थी, आध्यात्मिक खजाने की सुरक्षा रखना, लेकिन आपने इस ओर ध्यान नही दिया। इसलिए यह सब कुछ स्थिति बनी है। इसलिये अब वापस ऐसी गलती न हो, इसका पूरा ध्यान रखना है। सभी ने अपनी भूल महसूस की और अब सभी भौतिक श्री की अभिवृद्धि बाद मे, पहले आध्यात्मिक श्री की अभिवृद्धि के लिए तन्मय होकर निश्चित समय तक साधना करने लगे।

सबका जीवन सुखमय बन गया। बन्धुओ ! मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त हुआ है, यह मैं पहले ही बतला चुका हूँ। ऐसे जीवन से आध्यात्मिक खजाने को पाने के लिये प्रयत्न करना है। जो व्यक्ति अतरग की साधना, जीवन का समीक्षण छोडकर केवल वाहरी पैसो के पीछे दोडता है, उसकी हालत उन तीनो बडे भाइयो की तरह होती है। छोटे भाई ने इतने कष्टो के बीच रहकर भी धर्म नहीं छोडा, परिणाम स्वरूप उसका अन्दर–बाहर दोनो ही जीवन सुखमय बन गया। जिस किसी भव्य आत्मा को यदि मानव जीवन सुखी वनाना हे तो वह इस आध्यात्मिक साधना मे लगे, जिससे वह एक दिन अन्तरग के पूर्ण खजाने को प्राप्त कर सकेगा। ऐसे मानव के चरणो को विश्व का सारा ही भौतिक खजाना पूजता रहेगा।

□□

वीतरागता में बाधक : क्रोध

- मेरा सबध प्रभु से कैसे हो ?
- कौन सा राग उत्तम ?
- आत्मा का सबसे बडा विकार क्रोध
- क्रोध एक शिकारी
- क्रोध रूप अफीम
- इहलोक परलोक घातक क्रोध
- सर्प जहर से भी अधिक क्रोध जहर
- घी से भी बढकर खून
- क्रोध के भयकर घातक परिणाम
- आत्मा से क्रोध को हटाओ।

कोहो य माणो य अणिग्गहिया,
माया य लोभो य पवड्ढमाण्णा।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया,
सिंचति मूलाई पुण - ब्भवस्स।।

दशवैकालिक सूत्र 5/40

क्रोध और मान जिनके अनिगृहीत हैं, माया और लोभ जिनके बढ रहे हैं, उन आत्माओ के लिये, आत्मिक गुणो को मलिन बनाने वाले ये कषाय, उनके पुनर्जन्म रूप वृक्ष के मूल को सिचित करते है।

क्रोध, आत्मा का भयकर शत्रु है। इसका उभार कैसे होता है, इसका वैज्ञानिक स्वरूप क्या है ? इससे क्या-क्या हानियॉ होती है ? आदि अनेक विषयो पर सप्रमाण हृदयगम्य विवेचन पढिये, प्रस्तुत प्रवचन मे।

प्रार्थना

धर्म जिनेश्वर गाऊ रग सूॅ, भगम पडशो हो प्रीत जिनेश्वर।
बीजो मन मन्दिर आयु नहीं, ए अम कुलवट रीत, जिनेश्वर।
एक पखी केम प्रीति परवडे, अभय मिल्य होय सधि जिनेश्वर।
हूॅ रागी हूॅ मोहे फदियो, तूॅ निरागी निरबन्ध जिनेश्वर।

बन्धुओ । धर्मनाथ भगवान् के नाम का उच्चारण करते ही कई बाते उभरकर सामने आती है। धर्मनाथ शब्द, धर्मनाथ तीर्थकर का द्योतक है। वास्तविक धर्म उनके उपदेश से फलित होता है और यह भी ज्ञात होता है कि वे धर्म का स्वरूप अपने जीवन मे परिपूर्ण अपना चुके थे। ऐसे धर्मनाथ भगवान की प्रार्थना करते हुए कवि कह रहा है कि भगवन् । मै भी धर्म के लिये आप से प्रीति करना चाहता हूॅ। आपके साथ सम्बन्ध जोडने की कोशिश करता हूॅ। परन्तु विवेक शक्ति मुझे याद दिलाती है कि सम्बन्ध किसके साथ जुड सकता है? परस्पर दो व्यक्तियो का सम्बन्ध जहॉ जुडने का प्रसग आता है, तो वे दोनो समान स्तर के होने चाहिये। चाहे वय से समान हो, बुद्धि से समान हो, शरीर बल से समान हो अथवा दुर्गुणो की दृष्टि से समान हो, चोरी और जोरी की दृष्टि से समान हो। कहा भी है कि 'समान व्यसनेषु व्यवसायेषु'। समान व्यसन और समान व्यवसाय जिनके हो, उनका ही सम्बन्ध निभता, निखरता है। गजेडी का गजेडी से और भगेडी का भगेडी से सम्बन्ध रहता है। सद्‌गुणी का सद्‌गुणी के साथ और दुर्गुणी का दुर्गुणी के साथ सम्बन्ध जुडता है।

मेरा सम्बन्ध प्रभु से कैसे हो ?

मै धर्मनाथ भगवान के साथ सम्बन्ध जोडने को तैयार हुआ हूॅ। तो क्या मैंने धर्मनाथ भगवान को अपनी बराबरी का समझ लिया ? विवेक शक्ति से देखता हूॅ तो कहा धर्मनाथ भगवान और कहा मैं ? इसलिये कवि कह रहा है– 'हूॅ रागी हूॅ मोहे फदियो, तू निरागी निर्बन्ध'। हे भगवान । मैंने आपके साथ सम्बन्ध जोडने का साहस

जरूर किया, परन्तु मेरी विवेक शक्ति कहती है कि यह मेरा दुस्साहस है। मेरे साथ धर्मनाथ भगवान का सम्बन्ध कैसे जुड सकता है ? क्योकि धर्मनाथ भगवान तो विरागी हैं। उनमे राग नही है, द्वेष नहीं है। काम और क्रोधादि शत्रु भी नही हैं और मैं अपने आप मे देखता हूँ तो मेरे अन्दर राग है, द्वेष है, काम, क्रोध, मद, मत्सर तृष्णादि दोष भरे हुए हैं। तो मैं उनके साथ कैसे सम्बन्ध जोड सकता हूँ ? व्यवहार पक्ष मे देखा जाता है कि व्यक्ति किसी सभ्य व्यक्ति से हाथ मिलाना चाहता है तो जो सभ्य पुरूष है उसके हाथ तो बिल्कुल स्वच्छ, साफ–सुथरे हो और जो हाथ मिलाने की चेष्टा कर रहा है, उसके हाथ अशुचि और कीचड से भरे हुए हो, तो वह अशुचि और कीचड से भरे हुए हाथो को साफ करके ही मिला सकता है। यदि वैसे ही मिलाता है तो बडी अयोग्यता साबित करता है। इसी दृष्टि से कवि कह रहा है कि मैं कैसे तुम्हारे से हाथ मिला सकता हूँ ? ये बाहरी हाथ नहीं, परन्तु भीतरी हाथ हैं। भीतरी हाथ मेरे कीचड से भरे हुए हैं, सने हुए हैं। उन हाथो को मैं कैसे लम्बे करू ? आप पवित्र आत्म स्वरूप विशुद्धि वाले हैं, वैसा मैं नही हूँ। कवि आनन्द–घनजी की यह भावना है। कहिए ! क्या आप भी भगवान से हाथ मिलाना चाहते हैं ? मिलाने को तो आप सब तैयार है। परन्तु देखिये ! मिलाने से पहले अपने हाथो को धो डालना, साफ कर लेना और अपने आपके अन्दर देखना कि हमारा अन्तरमन कैसा है ?

कौनसा राग उत्तम ?

जब तक व्यक्ति छद्मस्थ है, तब तक उसमे राग भी हो सकता है। छठे गुणस्थान से दसवे गुणस्थान तक प्रशस्त राग होता है, इसलिये सराग सयमी कहा है। परन्तु वह आध्यात्मिक साधना मे बाधक नहीं होता है और जो राग ससार के पदार्थो से, परिवार ओर स्त्रियो से, धन और वैभव से है – वह अप्रशस्त राग है। वह अन्तरमन को मलिन बनाने वाला है। इस राग के वशीभूत होकर मनुष्य आज अपने आपको भूलकर, कृत्य क्या है ? अकृत्य क्या है ? इसको वह

नही पहचान पाता। बैभान होकर चल रहा है। अपने अन्दर कितना कीचड इकट्ठा करता है ? इसका कभी अवलोकन कर देखे तो पता चले कि हमारी दशा क्या है ? और कहा भगवान की दशा है ? तब भगवान के साथ कैसे प्रीति जुड सके ? प्रीति, यह दो से सम्बन्धित है। भगवान मे प्रशस्त राग नही है, सरागी छद्मस्थो मे प्रशस्त और अप्रशस्त दोनो राग हैं। प्रशस्त राग पुण्य की तरह अमुक सीमा तक ऊपर बढाने वाला है। अप्रशस्त राग तो आम जनता मे भरा पडा है। इसी के कारण मनुष्य क्षण–क्षण मे कर्मबन्धन करता हुआ चला जा रहा है।

आत्मा का सबसे बड़ा विकार : क्रोध

सभी विकारो मे से, मलिन भावो मे से एक ही भाव ले, तो जिसे साधारण भाषा मे आप बोलते हैं गुस्सा–क्रोध। यह क्रोध क्या है ? आप जानते है ? कई मनुष्य क्रोध से प्राय अनभिज्ञ रहते है। उसके अधीन हो जाते हैं। उसको ओढ लेते हैं, परन्तु जानते नही है कि यह कौन सी चिडिया का नाम है ? क्रोध से कभी–कभी मनुष्य स्वय खिन्न हो जाता है। अपने आप मे हैरानी का अनुभव करने लगता है कि हा ! यह क्या कर डाला ? मैं गुस्सा नही करता और शाति से उत्तर देता तो कितना अच्छा रहता ? परन्तु मैं गुस्से मे आ गया। आवेश मे आकर जवाब दे दिया। उसकी अन्तरात्मा चाहती है कि ऐसा नही होना चाहिये। परन्तु यह इतना जबरदस्त है कि सब आत्माओ को घेरकर खडा है। यह प्राय प्रत्येक व्यक्ति के पास मे बैठा हुआ है।

क्रोध एक शिकारी

शिकारी पशु या शिकारी मनुष्य जेसे शिकार की टोह मे बैठा रहता है कि मुझे अवसर मिले और मै शिकार खेलूॅ। वैसे ही यह गुस्सा बहुत बडा शिकारी है, ऐसा कहूॅ तो चले, और दूसरे की घात करने वाला शत्रु कहूॅ तो भी चले– इसके मन के विपरीत जरा भी

हुआ नही कि झट आत्मा की सारी शक्तियो पर ऐसा जाल फैला देता है कि जिससे उसकी बुद्धि गुम हो जाती है। जो व्यक्ति गुस्से के आवेश मे आ रहा है, उस वक्त उसको कोई सज्जन--स्नेहीजन समझाने की चेष्टा करे कि खामोशी रखो, तो सुनेगा नही। उस समय वह बेभान बन जाता है। यह मन का बहुत बडा अशुद्ध रूप है–मलिन रूप है। जैसे अशुचि से भरे हाथो को सभ्य मनुष्यो के सामने नहीं बढाया जाता है, वैसे ही भयकर जहर यदि हाथो के लिपटा हुआ है और पता है कि यह जहर भरा हाथ अन्य व्यक्ति के लगाया नहीं कि उसके भी असर करेगा। तो उस वक्त भी सभ्य व्यक्ति उस हाथ को आगे नहीं बढाता है। इस गुस्से को, इस क्रोध को आप अशुचि और जहर भी कह सकते हैं। जहर मनुष्य के प्राणो का हरण करता है। यदि कोई सीधा सादा व्यक्ति जहर ले लेता है, तो उसके प्राण नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही क्रोध रूपी जहर से मनुष्य के प्राण नष्ट हो जाते हैं। बाहरी जहर तो एक ही भव समाप्त कर पाता है, पर क्रोध का जहर भव–भवान्तर बिगाड देता है।

क्रोध रूप अफीम

मनुष्य जितना गुस्सा करता है, उतना ही वह अपने आयुष्य को खत्म करता है। अफीम वह जहर है, जिसको थोडी–थोडी मात्रा मे लेते–लेते उसकी लत पडने से उसकी मात्रा बढाते–बढाते फिर एक तोला भी लेने लगता है, उससे वह धीरे–धीरे अपने प्राणो को समाप्त कर देता है। उन अफीमचियो की जिन्दगी जल्दी समाप्त हो जाती है। वे जितना आयुष्य लेकर आए है, पूरा नहीं भोगते हैं। वे बन्दूक की गोली के सदृश जल्दी नहीं मरते–एक साथ, धीरे–धीरे मर जाते हैं। वैसे ही यह गुस्सारूपी जहर मनुष्य को तत्क्षण मालूम नहीं होता परन्तु धीरे–धीरे यह मनुष्य के प्राणो पर असर करता है। यह परलोक बिगाडता है सो तो बिगाडता ही है परन्तु इहलोक भी बिगाडता है।

इहलोक परलोक घातक : क्रोध

आधुनिक युग के प्रवाह मे बहने वाले अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो कि आत्मा–परमात्मा, जन्म–पुर्नजन्म पर विश्वास नही रखते। उनका तो यही सिद्धान्त रहता है कि –

यावत् जीवेत् सुख जीवेत्, ऋण कृत्वा घृत पिवेत्
भस्मीभुतस्य देहस्य, पुनरागमन कुत

जब तक जीओ सुखपूर्वक जीओ। यदि मौज–मजा, ऐश्वर्य करने के लिये स्वय के पास पैसा नहीं है तो उधार ले लो। क्योकि शरीर के भस्म हो जाने पर कोई पुनरागमन–पुर्नजन्म नहीं होता। शरीर के विनाश के साथ ही आत्मा का भी विनाश हो जाता है। ऐसी मान्यताओ के सामने आए दिन पत्रिकाओ मे आने वाले पुनर्जन्मसिद्धि के अकाट्य प्रमाणो ने एक प्रश्न चिह्न खडा कर दिया है। खैर, पुनर्जन्म की बात गौण भी कर दे, तो पहले इस जीवन को सुखी बनाने के लिये भी क्रोध को छोडना अत्यन्त आवश्यक है। क्योकि वर्तमान जीवन मे तो सब सुख चाहते हैं ओर यह भी चाहते है कि हम तदुरूस्त रहे। क्या कोई व्यक्ति यह चाहता है कि मै बीमार बना रहूँ? क्या कोई चाहता है कि मेरे शरीर मे खून की कमी हो जाए? और कदाचित् कमजोरी मालूम होने लगी तो झट डॉक्टर और वेद्य को बताएगा कि आज शरीर मे कमजोरी क्यो महसूस हो रही है? डॉक्टर यदि कहता है कि तुम्हारे खून की कमी है। अत तुम खाना सादा खाओ, हल्का खाओ, भारी मत खाओ। जिससे खून बढे वैसा खाना खाओ। डॉक्टर के कथनानुसार वह दूध लेता है, फल–फ्रूट खाता है और यही चाहता है कि मेरे खून बढ जाए। इधर तो खून बढने की औषधि ले रहा है और उधर उसके पास एक गरीब व्यक्ति आ गया। वह कहता है मि भाई साहब, मैं गरीब हूँ, मेरे ऑप्रेशन का प्रसग है। परन्तु डॉक्टर कहता है कि आप्रेशन मे खून चाहिये। जो पैसे वाले हैं, वे तो पैसो से जल्दी खून प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु मेरे पास तो पैसा नही है। इसलिये कृपा करके आप मुझे अपना थोडा खून दे दीजिये।

बन्धुओ। जो अपना खुन बढाने की औषधि ले रहा है, उससे दूसरा मरीज खून माग रहा है। तब वह कहेगा भाई मै तो पहले ही कमजोर हूँ खून बढाने की औषधि ले रहा हूँ। मैं तो खून नही दे सकता हूँ वही व्यक्ति एक वक्त अति जोर से गुस्सा करता है तो वैज्ञानिको के कथनानुसार एक पोड भर खून को नष्ट कर डालता है। इसका वैज्ञानिको ने परिक्षण किया है। वैज्ञानिक लोग कहते है, एक पोड खून तो जल जाता है पर जो अवशेष रहता है उसमे अमुक–अमुक प्रकार का पॉयजन बन जाता है, उस पॉयजन को रासायनिक प्रक्रिया से बाहर निकालकर यदि मनुष्यो पर प्रयोग किया जाए तो उससे 80 मनुष्यो की मृत्यु हो सकती है। यही कारण है कि जो ज्यादा गुस्सा करता है वह खाते–पीते भी कमजोर रहता है। इसका तो आप लोगो को प्रत्यक्ष मे अनुभव है। चिन्तन कीजिए कि कोई बाहर का व्यक्ति आया और आपसे कहने लगा कि पॉच सौ रूपये देकर मैं एक जहर का इजेक्शन लगाता हूँ, किन्तु आप हजार रूपये मिलने पर भी नही लगवाएगे। परन्तु यह क्रोध रूपी शत्रु ऐसा इजेक्शन लगा देता है कि वह अवशिष्ट रहा हुआ रक्त, अस्सी आदमियो को मारने वाला जहर पैदा कर देता है।

सर्प के जहर से भी अधिक : क्रोध का जहर

बन्धुओ! इस क्रोध के अधीन क्यो होते हो? आपने यह सुना होगा, मैंने सुना है कि जो क्रोध अथवा गुस्सा करता है उसमे इतना जहर पैदा हो जाता है कि सर्प के जहर को भी मात कर देता है। एक सर्प ने किसी अत्यन्त क्रोध कर रहे व्यक्ति को काटा, तो उस व्यक्ति को सर्प का जहर तो नही चढा, परन्तु उस क्रोधीव्यक्ति का जहर सर्प पर चढ गया। वह थोडी दूर जाकर मूर्छित हो गया और मर गया। देखिये! मनुष्य अपने शरीर को तन्दुरस्त रखना चाहता है और कमजोरी आने पर डॉक्टर से दवा लेकर खून बढाता है, परन्तु उस खून को गुस्सा करके व्यर्थ मे गवा देता है। जरा विचार की जरूरत है।

घी से भी बढ़कर खून

कभी–कभी भाई कहते हैं कि क्या करू मुझे छेड दिया तो गुस्सा आ गया। अरे भाई, घी लेकर जा रहे हो और कोई छेडने वाला मिल गया तो क्या घी डाल दोगे? नहीं। इसी तरह से कोई दूसरा व्यक्ति आपको छेडता हे तो वह व्यक्ति आपके खून को जलाने के लिये छेडता है। उस समय आप इतने भोले बन जाते हैं कि उसने छेडा ओर आप क्रोधित हो गए। केसी विडम्बना हे? इस क्रोध से वर्तमान शरीर का नाश तो होता ही है, खून का भी साथ मे नाश हो जाता है। सुज्ञजन इसका विशेष रूप से ध्यान रखेगे तो उनकी तन्दुरुस्ती ठीक रहेगी ओर कर्म–बन्ध से भी बचेगे। इस क्षमाशीलता से आत्म–शुद्धि और निर्जरा भी होगी। इससे इहलोक के साथ परलोक भी सुधरेगा।

क्रोध के भयंकर घातक परिणाम

डॉक्टरो ने कहा है कि मनुष्य के शरीर मे चाकू का या किसी शस्त्र का घाव लगता है तो उसपर स्प्रिट लगा दी जाए तो सेप्टिक नही होता– जब कि स्प्रिट घाव नही भरती है– घाव अपने आप भर जाता है। यह तो बाहरी शस्त्र का घाव ऊपर के शरीर पर होता है। परन्तु गुस्से रूपी शस्त्र का घाव बुद्धि पर हो जाता है। बुद्धि को ज्ञान का एक माध्यम माना गया है, उसमे यदि घाव हो जाता है तो वह भरता नही है और जो रोजाना गुस्सा करता रहता है, उसके सोचने–समझने की क्षमता नष्ट प्राय हो जाती है, चाहे वह विद्यार्थी ही क्यो न हो? वह यदि क्रोध करते हुए चाहे कि परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाऊ तो कठिन है। परीक्षा मे बैठा और किसी ने छेड दिया, वही गुस्सा आ जाएगा, दिमाग गर्म हो जाएगा। फिर प्रश्न–पत्र ठीक तरह से हल नहीं कर सकेगा। वह कुछ का कुछ लिख देगा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी सिद्ध हो गया है कि जो ज्यादा गुस्सा करता है, उसे कभी लकवा मार जाता है और कभी हार्ट फेल भी हो जाता है– अधिक गुस्सा करने से कभी मस्तिष्क की नस भी फट

जाती है और जीवन लीला समाप्त हो जाती है। गुस्से के कई उदाहरण सामने आ चुके हैं। धर्मस्थान को लेकर दो भाई एक शिला के लिये लडे और लडते–लडते एक भाई इतना उत्तेजित हो गया कि मस्तिष्क का हेमरेज हो गया और वह मर गया। इस प्रकार प्रत्यक्ष मे क्रोध के इतने नुकसान है। यह वर्तमान जीवन को भी नुकसान पहुँचाता है और परलोक भी बिगाडता है। ऐसी स्थिति मे नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी अपने जीवन को खतरे मे नहीं डाल सकता है। परन्तु भद्रिक भाई गुस्से मे आकर अपने जीवन को कितने खतरे मे डाल देते हैं। इसका चिन्तन–मनन भी नही करते। व्यर्थ के गुस्से मे आकर अपने आपको नष्ट करते हैं। वे अपने प्राणो का भी नाश करते हैं तीर्थकरो ने घोषणा की है कि –

कोहो य माणो य अणिग्गहिया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिचति मूलाई पुणब्भवस्य।।

दशवै 5 40

जिनकी आत्मा को ससार से मुक्ति पाना हो उनको क्या चाहिये ? इसके लिये भी भगवान महावीर और अनन्त तीर्थंकरो ने यह घोषणा की कि क्रोध और लोभ, मान और माया इनकी धुलाई करो। इनकी धुलाई करने से तुम्हारे जीवन और मरण का चक्कर मिटेगा और जब तक आप इनके अधीन रहोगे तब तक ससार बढता हुआ चला जाएगा। आत्मा को शाति नहीं मिलेगी। कभी–कभी व्यक्ति को गुस्सा करने वाला पात्र नहीं मिलता है तो वह अपने आप पर गुस्सा करने लग जाता है।

क्रोध का भयंकर परिणाम

कई भाई कहते हैं कि महाराज सा। इस गुस्से के विषय मे कुछ समझाइए। अभी तो इससे होने वाला नुकसान ही नुकसान समझा रहा हूँ। एक रूपक आपके समक्ष रख देता हूँ ताकि गुस्से का पूरा नक्शा आपके सामने आ जाए।

इग्लैंड मे एक भाई था। वह क्रिकेट का अच्छा खिलाडी था। एक दिन वह क्रिकेट खेल रहा था। आप जानते ही हैं कि खेल मे हार–जीत तो होती ही है। दो खिलाडी खेलते हैं तो एक जीतता है और दूसरा हारता है। खेल का परिणाम यही है। सबके सब नहीं जीतते हैं। एक बार हार जाता है तो दुबारा जीत भी सकता है। वह भाई उस खेल मे इस बार हार गया। उसे इतना गुस्सा आया कि वह जीतने वाली टीम के ऊपर तो गुस्सा नही निकाल सका। परन्तु जब वह घर पर पहुँचा तो गुस्से मे आग–बबूला हो रहा था। उसकी पत्नि उसके स्वभाव को जानती थी। वह पत्नि इतनी चतुर थी कि उसकी आकृति को देखकर उसके मन की बात को ताड जाती थी। यह भी उसका ख्याल था कि मेरे पति जब गुस्से मे आते हैं तो अपना भान भूल जाते हैं। कभी–कभी अपनी घात के साथ दूसरे की भी घात कर डालते हैं। पत्नि उसकी आकृति को देखकर समझ गई कि रोष मे है, आज कुछ न कुछ कहर अवश्य ढायेगे। उसने शीघ्रता से कमरे की सजावट कर दी, यथास्थान टेबिल पर भोजन की प्लेटे वगैरह जमा दी और किसी बात की कमी नही रखी, परन्तु उसके गुस्से का आवेग बढता ही जा रहा था। वह बाहर तो गुस्से को निकाल नहीं सका। पत्नि को देखते ही उस पर बरस पडा और प्लेटे फोडने लगा। पत्नि ने देखा कि इनके शरीर मे आ गया है भूत, अब मेरी खैर नही है। यह देव योनि का भूत नही है, पर ज्ञानीजनो ने इसको भूत की सज्ञा भी दी है। यह जिसके शरीर मे प्रवेश कर जाता है तो जल्दी से नहीं निकलता है। पत्नि तत्काल दरवाजे से निकल गई और बाहर से कुदा लगा दिया। वह अन्दर ही अन्दर गुस्सा करने लगा। अन्दर एक लाठी पडी थी, उससे प्लेटे फोडीं, प्लेटे फोडने के पश्चात् काच फोडने लगा और जो घर के बर्तन थे उनको भी फोड दिये। फर्नीचर को नुकसान पहुँचाया। कहिए, यह किसका नुकसान हो रहा है ? अरे । जीवन का खून तो जल ही रहा है परन्तु बाहर की कीमती सामग्री को भी नष्ट कर रहा है। सेंकडो रूपयो की सामग्री नष्ट कर दी और फिर भी क्रोध शात नहीं

हुआ तो दातो से अपनी चमडी को भी काटने लगा। वह खून से लथपथ हो गया। आखिर शिथिल होकर धडाम से नीचे गिरा। उसकी पत्नि किवाड के छिद्र मे से सब कुछ देख रही थी। जब उसने देखा कि अब वे शात हो गये हैं तो दरवाजा खोलकर अन्दर आई और उनकी मरहमपट्टी की। अब वह भी रोने लगा और अपने किए पर पश्चाताप करने लगा। परन्तु जो नुकसान हो गया था वह तो फिर नही आ सकता था।

आत्मा से क्रोध को हटाओ

बन्धुओ। जीवन की इतनी बडी शक्ति को नष्ट करने वाला इतना भयकर शत्रु इसको साथ मे नहीं रहने देना चाहिये। मन मे प्रवेश नही होने देना चाहिए। यदि सुज्ञजन इसको उपयुक्त समझे तो इस पर चिन्तन करे और अपने जीवन को सम्भालने की चेष्टा करे। बहुत लम्बी प्रक्रिया है। परन्तु आप कभी सोचते होगे कि गृहस्थाश्रम मे रहता हुआ व्यक्ति भी क्या कभी गुस्से को शमित कर सकता है? मैं सोचता हूँ कि क्यो नहीं कर सकता है, चाहे तो सब कुछ कर सकता है, बल्कि जो ज्यादा गुस्सा करने वाले हैं वे कभी–कभी ज्यादा क्षमाशील भी हो सकते हैं। परन्तु चाहिए अन्दर की लगन। ऐसे कई ऐतिहासिक उदाहरण हैं। उन उदाहरणो को रखने का अभी समय नही है पर इतना अवश्य कहूँगा कि यह तो मात्र क्रोध का अति सक्षिप्त रूप आपके सामने आया है, इसका विस्तृत स्वरूप समझने के साथ ही वीतरागता मे बाधक अन्य दुर्गुणो के स्वरूप को भी समझे। केवल समझकर ही नहीं रहे, उन्हे आत्मा से हटाने का दृढ सकल्प करे। दृढ सकल्प से वे दुर्गुण आपकी आत्मा से अवश्य दूर होगे। जैसे–जैसे उन दुर्गुणो का आत्मा से दुराव होगा, आपका भगवान धर्मनाथ के साथ सबध जुडता चला जाएगा।

□□

प्रवृत्ति हो क्षमा में-निवृत्ति हो क्रोध से

उवसमेण हणे कोहं

—दशवैकालिक सूत्र– 8/39

उपशम से क्रोध का हनन करो।

क्रोध को जीतने के लिये जीवन मे क्षमा का आना आवश्यक है। जीवनको क्षमामय बनाने के लिए अन्तरग मे समीक्षण की नितान्त आवश्यकता है।

क्रोध, आत्मा की ही नही, अपितु शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार की हानियाँ करता है। अत इसे कैसे जीते? इसके लिए पढिये प्रस्तुत प्रवचन मे क्रोध विषयक विशिष्ट मार्मिक विवेचन।

विमल जिन दिट्ठा लोयण आज।
मारा सिज्या वाछित काज।।

बधुओ ! भव्य जीवो को ज्ञानी जन जो कुछ भी उपदेश–प्रतिबोध देते है, उस प्रतिबोध मे "बाबावाक्य प्रमाणम्" की स्थिति नही रहती। उपदेश देते हुए कभी यह नही कहा जाता है कि मैं कहता हूँ सो मान लो। बल्कि यह स्पष्ट निर्देश होता है कि जो कुछ कहा जा रहा है, वह असदिग्ध, दृष्टा, अवितथ, प्रवक्ता, वीतराग वाणी के अनुसार कहा जा रहा है। उस कथन पर चिन्तन–मनन किया जाए तो वस्तु–सत्य स्वत ही स्पष्ट रूप से उजागर हो जाता है, क्योकि वीतराग–वाणी का कुछ महत्व ही ऐसा होता है कि वह भव्य–साधक के हृदय को छू जाती है।

आग्रहमुक्त : जिनवाणी

वीतराग वाणी मे किसी भी आचरण के प्रति आग्रह–दुराग्रह नहीं होता। मध्यस्थ दृष्टि से उपदेश दे दिया जाता है। आचरण करना है या नहीं, यह सब श्रोताओ के ऊपर छोड दिया जाता है। उनकी इच्छा हो तो ग्रहण करे न हो तो न करे। महाप्रभु महावीर के पास कोई व्यक्ति दीक्षा लेने की भावना से आया तो भी महाप्रभु ने कभी उससे आग्रह नहीं किया, बल्कि यही कहा– 'अहासुह देवाणुप्पिया' हे देवानुप्रिय ! तुम्हे जैसा सुख हो, वैसा करो। क्यो कि यह सत्य है कि किसी पर दबाव डालकर यदि आचरण करवाया जाएगा तो वह आचरण स्थायित्व को प्राप्त नही हो सकेगा। स्वेच्छा से किया गया आचरण ही स्थायित्व को प्राप्त होता है और यथानुरूप फलवान भी होता है। महाप्रभु का मुख्य उद्देश्य लोगो को हिताहित का ज्ञान कराना रहा है। क्योकि हित–अहित का विवेक होने पर ही हित मे प्रवृति और अहित से निवृति हो सकती है। जब किसी बालक को यह समझा दिया जाए कि यह पायजन–जह0र है, जिसे खाने पर तत्काल मृत्यु हो जाती है, तो वह बच्चा उस जहर को खाने के लिये कतई

तैयार नही होता। यही स्थिति भव्य आत्माओ की वीतराग–वाणी सुनकर होती है। उनकी भी अहित से निवृति और हित मे प्रवृति होने लग जाती है।

जीवन की मणियाँ

हित तत्वो मे प्रवृति भी तभी हो सकती है, जब अन्तर मे पैठ की जाए। जीवन की ऊँचाईयो का स्पर्श वही से होगा। विशालकाय बडे–बडे पहाडो की चट्टानो के बीच कही कही चम–चम करती हुई मणियॉ भी उपलब्ध हो जाए जिन्हे पाने के लिये मानव को न मालूम कितना परिश्रम करना पडता है। आप जानते ही हैं अत्यन्त परिश्रम के बाद भी यह आवश्यक नही होता कि उसे मणियो की उपलब्धि हो ही जाये, फिर भी खोजी व्यक्ति अपनी खोज नही छोडता। व्यापारी, व्यापार करता है, दिन–रात परिश्रम करता है, तथापि यह आवश्यक नहीं कि उसे धन की प्राप्ति हो ही जाय, तो भी व्यापारी व्यापार करना नही छोडता है। जब बाहरी धन की प्राप्ति हो या न हो, व्यापारी व्यापार करना नही छोडता है। जब बाहरी धन को प्राप्त करने के लिये भी इतने परिश्रम करने की आवश्यकता होती है, तो बन्धुओ ! जरा विचार करिए– जीवन की मणियॉ, अतरग की चमक–दमक को पाने के लिए कितने परिश्रम की आवश्यकता होगी? जरा अपनी मानसिक शक्ति को बाहरी प्रवृतियो से हटाकर अन्तरग की ओर नियोजित करने का प्रयास करे।

धैर्यता मत खोईये

अन्तरग की खोज यद्यपि बहुत रूक्ष विषय है, किन्तु जब रूक्ष विषय से भी तत्त्व मिलने वाला होता है तो समझदार मानव उसे छोडता नही है।

बजर भूमि पर भी कृषक अपना परिश्रम नही छोडता है, उसे खोद–खोद कर ककर–पत्थर बाहर निकाल कर, उसे सरस और

उपजाऊ बना देता है और उसमे समय पर बीज बो देता है, अत्यन्त परिश्रम के साथ उसका सीचन सरक्षण करने लगता है। अब उसका परिश्रम चमत्कार दिखाता है। और वह बजर भूमि अत्यधिक फसल से लहलहा उठती है। यह है परिश्रम और धैर्य का फल। ठीक उसी प्रकार आज के मानवो के अन्तरग का जीवन भी बजर हो चुका है। वह काम क्रोध, मद–मोह, विषय–कषाय आदि ककर–पत्थरो से भरा पडा है। जब तक इस बजरता को दूर नही किया जायेगा तब तक उनमे धर्म का बीज नही बोया जा सकेगा। इसके लिये कठिन परिश्रम करना ही होगा। अविचल विश्वास और अटल धैर्य के साथ परिश्रम किया जाए तो अन्तरग जीवन मे भी शाति की वह फसल लहलहा सकती है। आवश्यकता है धैर्य के साथ सत्यपुरूषार्थ करने की।

प्रतिबिम्ब देखो : स्वच्छता में

जीवन मे अतरग की बजर भूमि को सरस बनाने के लिये सत्पुरूषार्थ की आवश्यकता है। वह सत्यपुरूषार्थ आत्मा को निर्मल बनाने वाला बनता है। निर्मल वस्तु का ध्यान करने से व्यक्ति निर्मल वनता है और मलिन वस्तु का चिन्तन करने से व्यक्ति की मानसिक भूमिका भी मलिन बन जाती है। मनुष्य कीचड के सामने खडा होता है, और उसका प्रतिबिम्ब कीचड से सना प्रतीत होता है और स्वच्छ पानी के सामने खडा होता है, तो उसका प्रतिबिम्ब स्वच्छ रूप मे उभरने लगता है, ठीक इसी प्रकार निर्मल गुणो के स्वामी तीर्थंकर देव के जीवन को सामने रखने पर स्वय के जीवन मे भी पवितत्रा का प्रतिबिम्ब पडता है। आत्मा मे जो गुण मलिनता को प्राप्त है, कर्मो के उदय से जो अशुद्ध बन चुके हैं, जिन्हे विकारी भाव की दशा भी कहा जा सकता है। वैभाविक रूप या राग–द्वेष, काम–क्रोध की परिणति भी कहा जा सकता है, उन काम–क्रोधादि के प्रभाव से आत्मा के निर्मल गुण भी मलिन बन जाते हैं। जेसे कि चमकदार रत्न मिट्टी से लिप्त होकर मलिन हो जाता है, वैसे ही आत्मा भी कर्म रूपी मिट्टी से मलिन हो जाती है।

तीर्थकरो ने जब पवित्र स्वरूप को प्राप्त किया तो उनकी आत्मा पर रहा कर्म का मलिन रूप दूर हटता चला गया। अत ऐसे पवित्र महाप्रभु की स्तुति करते हुए जीवन के भीतर प्रवेश किया जाये तो स्वय का जीवन भी पवित्र बन जाता है क्योकि निर्मल वस्तु का ध्यान करने से व्यक्ति स्वय भी निर्मल बन जाता है।

सजातीय निमित्त

निमित्त जरूर चाहिए, निमित्त से व्यक्ति जल्दी ऊपर आता है। परन्तु निमित्त भी ऐसा हो, जो गुणो को बाहर प्रकट करने वाला सजातिय हो, विजातिय निमित्त नही। सजातीय का मतलब यह है कि जिस जाति मे भगवान ने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त किया है, वैसी ही शुद्ध जाति सजातीय है। क्योकि स्वजाति का व्यक्ति स्वजाति के व्यक्ति को जल्दी आकर्षित कर लेता है। शायद इसका कभी आप लोगो ने अनुभव किया हो, हम सतो को तो प्राय इसका अनुभव होता रहता है। उदाहरण के रूप मे जब विहार के प्रसग से हम एक गॉव से दूसरे गॉव जा रहे थे, इस बीच जगल मे हमे देखने को मिला कि एक तीतर पकडने वाला व्यक्ति, तीतर पकडने के लिए जगल मे आया हुआ था। उसके पास मे पाला हुआ एक तीतर पहले से ही था। उस व्यक्ति ने उस तीतर को झाडियो के वीच छोड दिया। अब वह तीतर जोर–जोर से आवाज लगाने लगा। अपने स्वजातीय तीतर की आवाज सुनकर अनेक तीतर जो झाडियो मे छिपे हुए थे, बाहर आने लगे और वहॉ एकत्रित होने लगे, जिससे उस तीतर पकडने वाले ने सुगमता से उन्हे पकड लिया। तीतर पकडने के लिए अधिकतर लोग ऐसा करते हे क्योकि विना तीतर की आवाज के अन्य तीतर झाडियो से निकलकर बाहर नहीं आते है।

तीतरो की तरह ही मनुष्य का जीवन भी एक ऐसा सजातीय जीवन ह, जिससे परमात्म स्वरूप की प्राप्ति हो सकती है। मनुष्य जीवन मे रहने वाली आत्मा के चारो ओर भी कर्मो की ऐसी झाडियॉ है कि उनके बीच मे यह आत्मा अपने निर्मल स्वरूप मे होकर भी

उसमे उलझी हुई है। ऐसी इस आत्मा को बाहरी तत्वो मे आप बुलाना चाहे तो वह आ नहीं सकती। आत्मा की जाति का शुद्ध स्वरूप परमात्मा ही है। जब आत्मा, परमात्मा के निर्मल गुणो को याद करती हे, तब उस आत्मा का परमात्म स्वरूप निखरने लगता है और वह कर्मो की झाडियो से हटती हुई अपने परिपूर्ण स्वरूप को निखारने मे समर्थ हो जाती है।

मानस हंस को जागृत करो

कवि ने भगवान को सबोधित करते हुए कहा 'मुनिजन मानस हस।' भगवन! आप गुणीजनो के निर्मल मन रूप सरोवर के हस हो। वह हस सरोवर के किनारे बैठता है, जहॉ उसे मोती मिलते है। वेसे ही भगवान रूपी हस भी जिस व्यक्ति के मन सरोवर मे गुण रूपी मोती बिखरे होते हैं, वही जाकर बैठते हैं। भगवान कोई सिद्ध लोक से चलकर नही आते, अपितु ज्यो-ज्यो हमारे गुणो का विकास होता जाता है, त्यो-त्यो हमारी आत्मा का भगवत् स्वरूप प्रकट होने लग जाता है। इसलिए आनन्दघन जी ने सकेत किया है- तुम स्वय अभ्यास करो, गुण ही तुम्हारे जीवन मे लाभप्रद सिद्ध होगे। यदि अपने जीवन को गुणो की तरफ आकर्षित नही किया तो यह आत्मा, स्वस्वरूप को निखारने मे समर्थ नही हो सकेगी। ऐसी स्थिति मे, अनादिकाल से ससार मे भटकती आई आत्मा ओर भटकती रहेगी।

क्रोध बनाम संसार विस्तार

कल मैने कषाय विवेचन मे क्रोध कषाय के विषय मे कुछ बतलाया था। जब आत्मा इसका यथार्थ बोध प्राप्त कर इन्हे दूर करने का प्रयास करती है, तब वह निरन्तर वीतराग भाव की ओर लगती है और जो आत्मा कषाय भाव मे रहती है वह भव-भवान्तर को बढाने लगती है। आचाराग सूत्र मे स्पष्ट कहा है- जे गुणे से मूल ठाणे से गुणे' अर्थात जो व्यक्ति मूल को सींचता है, वह ससार के मूल का सिचन करता

व्यक्ति ससार–सागर मे डूब जाता है। जैसे काजल की डिब्बी मे काजल ठसाठस भरा हुआ है, वैसे ही कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल ससार मे ठसाठस भरे हुए है। जब व्यक्ति गुस्सा करता है तो कर्म वर्गणा के पुद्‌गल आत्मा को मलिन बना देते है। जब उत्तेजना आने लगती है, तब आत्मिक स्वरूप मलिन से मलिन होता चला जाता है। क्रोध की उत्तेजना से आत्मा की कर्मो से मलिनता ही नहीं, अपितु शारीरिक हानियॉ भी होती है। इससे ब्लड प्रेशर, लकवा, हार्ट–फेल तथा ब्रेन हेमरेज भी हो जाते हैं।

क्रोध को हटाएँ

क्रोध की इन हानियो को जानते हुए क्रोध को दूर करने का प्रयास करे। यद्यपि शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो, जो अपनी ही हानि करना चाहे, तथापि क्रोध मे बेभान होकर वे अपनी हानि करते रहते हैं, ऐसी स्थिति मे उन्हे होने वाली स्वय की हानियॉ जान लेना आवश्यक है, जो कि मैं बतला चुका हूँ। जरा आप ध्यान दीजिये– जब किसी को क्रोध आता है, तब क्रोध का प्रभाव सबसे पहले शरीर पर दिखलाई देता है। तभी सामने वाला व्यक्ति, उसे देखकर जान लेता है कि इसे क्रोध आ रहा है। जिस व्यक्ति को क्रोध नही आता है, उसका चेहरा सौम्य रहता है, उसके सौम्य चेहरे को देखकर सामने वाला व्यक्ति यह सहज ही अनुमान लगा लेता है कि इन्हें क्रोध नहीं आता है। यदि अपना चेहरा सदा सौम्य बनाए रखना है तो क्रोध का त्याग कर देना चाहिये।

क्रोध को कैसे छोड़ें?

कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति क्रोध को छोढना चाहते हुए भी छोड नही पाता है। बहुत चाहता है कि क्रोध न करू लेकिन जब सामने ऐसी कोई परिस्थिति है तो वह क्रोध कर बैठता है। उस समय सब कुछ भूल जाता है। ऐसी परिस्थिति मे क्रोध का छूटना सम्भव नही लगता, किन्तु ऐसी बात नही है। जब क्रोध छोडने

की भावना अन्तर दिल से जागती है तो उस दिन क्रोध छूट ही जाता हे। यदि आपको क्रोध आता है तो आप किसी को क्रोध मे बेभान होकर कुछ भी बोल देते है तो आप यह निर्णय लीजिये कि जिस पर मुझे क्रोध आएगा, मैं उससे माफी माग लूँगा। यदि आप अपने अभिमान वश इतना साहस न कर सके तो उस दिन आपकी सर्वाधिक प्रिय वस्तु को खाना छोड दीजिये। जैसे किसी को चाय अधिक प्रिय होती है, उसे पिए बिना काम नहीं चलता तो उस दिन के लिए चाय छोड दीजिये। जब–जब भी क्रोध आए चाय पीना छोड दे। तो स्वत ही क्रोध शात हो जाएगा। यह एक प्रक्रिया है, क्रोध छोडने की। प्रबुद्ध व्यक्ति क्रोध से होने वाली हानियॉ और क्षमा से होने वाले लाभ को समझकर ही क्रोध को छोडकर क्षमा धारण कर लेते है। क्रोध नही करने पर शरीर की पवित्रता, बुद्धी की स्वच्छता और जो सारभूत तत्त्व हैं उनको पोषण मिलता है। क्रोध करने पर वे सारभूत तत्त्व विष मे परिणत हो जाते हैं।

क्रोध का परिणाम : चण्डकौशिक सर्प

आप जानते ही होगे–चण्ड कौशिक का जीव पूर्व भव में साधु रूप मे था। साधना पथ पर चल रहा था किन्तु शिष्य के द्वारा वार–वार छेडने पर उसे गुस्सा आ गया और गुस्से मे मृत्यु होने से उसका परिणाम आगे चलकर चण्डकौशिक सर्प के रूप मे उभरकर आया। चण्डकोशिक सर्प का विकराल रूप क्रोध की भयकरता को बतला रहा था, जिसकी फुत्कार मात्र से चरिन्दे ओर परिन्दे भी कापने लगे थे। पूरा जगल साय–साय करने लगा था। मीलो तक आवागमन बद हो चुका था। चण्डकोशिक का नाम सुनने मात्र से लोगो के मन मे एक कपकपी सी छूटने लगती थी।

ऐसे चण्डकोशिक सर्प को भी महाप्रभु ने अपने तेज के प्रभाव से शान्त वना दिया था।

एक क्रोधी को भी पूर्ण क्षमाशील वना देना– एक जादुई

चमत्कार से कम नही था। यह जादू था- प्रभु महावीर के शान्त-प्रशान्त जीवन का। जादू से तात्पर्य कोई मन्त्र-तन्त्रो के प्रयोग से नही है अपितु महाप्रभु के क्षमाशील जीवन से है।

क्षमा का प्रभाव

जब महाप्रभु का विचरण छद्मस्थावस्था मे हो रहा था, उस समय गोशालक नामक एक व्यक्ति उनके साथ हो गया और महाप्रभु से कहने लगा- भगवन ! मै आपका शिष्य बनूगा। यह कहता हुआ वह भगवान के साथ ही रहने लगा। एक बार वन विहार करते हुए प्रभु महावीर पधार रहे थे। उस समय महाप्रभु के विहार मार्ग पर वैश्यायन बालतपस्वी साधना कर रहा था। वैश्यायन बालतपस्वी के सर से जुए निकल-निकल कर जमीन पर गिर रही थीं। सूर्य के तेज से जुए मर न जाए, इसलिये बाल तपस्वी उन्हे उठा उठा कर पुन सिर पर रख रहा था।

महाप्रभु तो युगप्रमाण भूमि को देखते हुए अपनी गति से आगे बढ गये, किन्तु महाप्रभु के पीछे आ रहे गोशालक से यह दृश्य देखा नही गया और वह बोल उठा-ए जुओ के श्य्यातर ! लेकिन बाल तपस्वी ने गोशालक की बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। तब गोशालक ने दो तीन बार इस वाक्य को दोहराया। बार-बार के इस कथन से बालतपस्वी क्रोधित हो गया और उसने गौशालक को खत्म करने के लिये उस पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया। इस प्रयोग से गोशालक बचाओ-बचाओ चिल्लाने लगा। महाप्रभु ने पीछे मुडकर गोशालक को तेजोलेश्या से जलते देखा तो उन्होने शीतल लेश्या से तेजोलेश्या को लौटा कर गोशालक की रक्षा की। महाप्रभु ने अपनी अप्रमत्त साधना के बीच अनुकम्पा का यह महान कार्य कर जनता के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया था। महाप्रभु की इस क्षमा साधना का ही यह प्रभाव था कि उनमे तेजोअग्नि को प्रशामित करने की शक्ति भी जागृत थी। जितना-जितना अन्तर मे क्षमा का विस्तार होता जाता है, उतनी-उतनी शक्ति का अर्जन होता जाता है। जो

शक्ति महाप्रभु को प्राप्त थी, ऐसी ही शक्ति भव्य मानवो को प्राप्त हो सकती हे। आवश्यकता है क्रोध से हटकर क्षमा को जीवन मे अपनाने की।

क्रोध को जीतने के कुछ उपाय

आप प्रात काल जब ब्रह्म मुहूर्त मे उठे, तब यह दृढ प्रतिज्ञा करे कि मैं गुस्सा–क्रोध नही करूगा। चाहे कैसी भी परिस्थिति आवे, क्षमा भाव से विचलित नही होऊगा। अपने आप ही क्रोध से कहिये– क्रोध तुम रूक क्यो नही जाते? तुम्हारा आना मेरी आत्मा के लिये हितकर नही है। इस चिन्तन के साथ ही क्रोध का समीक्षण करो। यह समीक्षण, इन चर्मचक्षुओ से नही हो सकता। इसके लिये अन्तर नेत्रो की आवश्यकता है। जब अन्त चक्षु मे आप क्रोध का समीक्षण करने लगेगे तो क्रोध दूर भागता हुआ नजर आएगा। शास्त्रकारो ने भी कहा है– 'उवसमेण हणेकोह' उपशम से क्रोध को शमित करो। यह उपशम भी समीक्षण से ही होगा। जिस प्रकार पूर्व दिशा मे सूर्य उदित होता है और अधकार भागता चला जाता है, उसी प्रकार क्रोध का समीक्षण का तेज ज्यो–ज्यो अन्तरग मे फैलता चला जाता है, त्यो–त्यो क्रोध का अधकार समाप्त होता चला जाता है।

क्रोध को समाप्त करने के लिए इससे भी सरल उपाय है जब–जब भी क्रोध आवे, उस समय तुरन्त आप मुँह मे गर्म या धोवन पानी रख ले। उस पानी को न तो पेट मे उतारे और न ही बाहर फेंके। जब आपका क्रोध समाप्त हो जाए तब उसका जो भी करना चाहे स्वतत्र हैं। यह तो उन बच्चो एव सामान्य व्यक्तियो के लिये उपाय हे। परन्तु जो समझदार व्यक्ति हैं, वे तो क्रोध की हानि ओर क्षमा के गुणो को जानकर स्वत ही विवेक से क्रोध के दुर्गुणो से मुक्त हो सकते है। जब जब बुद्धिमान व्यक्ति यह समझ लेता है कि इस वस्तु मे जहर है तो वह उस वस्तु को किसी भी कीमत पर खाने के लिए तेयार नहीं होता, क्योकि वह यह अच्छी तरह से जानता हे कि इसके खाने से निश्चित ही मेरी मृत्यु हो जाएगी। क्रोध भी एक प्रकार

का जहर ही है जिसके लिए वैज्ञानिको ने अनेक प्रयोग कर दिखाए है जिनकी व्याख्या मै पूर्व मे ही कर चुका हूॅ। ऐसे क्रोध रूप जहर से बुद्धिमान व्यक्ति को सदा मुक्त रहना चाहिये।

क्रोध वह घातक शस्त्र है, जिसका प्रहार हमारी शारीरिक, मानसिक एव कायिक सभी परिस्थितियो पर होता है। क्रोधी व्यक्ति कभी भी शाति की अनुभूति नहीं कर सकता। ऐसे घातक प्रहार से अपने आपको बचाना है। भक्त भगवान से यही प्रार्थना करता है कि –

सच्चा भगत बन जाऊ, भगवान तुम्हारा अब मै।
क्रोध निकट नही आने देऊ, शस्त्र अचूक क्षमा का लेऊ।
दूर ही मार भगाऊ, भगवान तुम्हारा अब मैं

हम भी अपने भीतर विद्यमान परमात्म शक्ति को जागृत करने के लिए परम प्रभु से प्रार्थना करे और सत् पुरूषार्थ के बल से क्रोध को हटाने का प्रयास करे तो एक न एक दिन हमारी आत्मा भी परमात्मा के समान हो सकेगी। □□

मूल्यांकन : मानव जीवन का

- जल और जीवन
- तू ही तुम्हारा हिसक
- समझिये स्व पर जीवन को
- श्रेयासि बहु विघ्नानि
- महाप्रयाण गणेशाचार्य का
- सच्ची धर्म सहायिका मदन रेखा

तुमं सि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि।
तुम सि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमं सि नाम सच्चेव जं परितावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमं सि नाम सच्चेव जं परिघेतव्वं ति मन्नसि।
तुम सि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्व ति मन्नसि।

— आचाराग सूत्र 1/2/5

जिसे तू हनन योग्य मानता हे, वह तू ही है।
जिसे तू आज्ञा मे रखने योग्य मानता हे, वह तू ही है।
जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है, वह तू ही हे।
जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है, वह तू ही हे।
जिसे तू मारने योग्य मानता हे, वह तू ही है।

मनुष्य प्रमाद के वशीभूत होकर जिन प्राणियो का उपमर्दन करता है, हिसा करता है वहाँ उन प्राणियो की तो हिसा होती ही है साथ ही स्वय की भी हिसा होती हे।

जल और जीवन

बन्धुओ! यह जीवन किस प्रकार आता है और किस प्रकार से चला जाता है। परन्तु ससार की गति नदी के प्रवाह की तरह चलती रहती है। प्रवाह को कोई पकड नहीं सकता। जो पानी आया वह बह जाता है। वैसे ही मनुष्य जीवन की सरिता आती हे और चली जाती है। जो प्रवाह रूप मे वह जाता है उसका कोई विशेष मूल्याकन नही होता। जो नदी मे पानी वह रहा है उसका भी कोई विशेष मूल्य नही है। मनुष्य भी साधारण मनुष्यो की तरह जन्मा और चला गया तो उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं रहता। परन्तु महत्त्व उसका रहता है कि जिसने अपने जीवन को कुछ विशेष मार्ग पर आरूढ किया है। नदी के पानी की विशेषता भी तभी बढती हे कि जब नदी का पानी जन सेवा मे काम आने वाली अवस्था को प्राप्त करे।वह कभी किसी पोधे के प्राणो की रक्षा करता है। सूखते हुए वनस्पति के जीवो को वह सरक्षण देता है। उसकी प्यास को शात करके जीवन दान देता है, उस वक्त उस पानी की विशेष कीमत हो जाती है, महत्व बढ जाता है। पानी की एक बूद की भी कीमत है, बहुत बडी कीमत है। प्राय मनुष्य जैसे पानी की कीमत नही समझते, वैसे ही मनुष्य जीवन की कीमत भी नही समझते है। पानी को वे बेकद्री से इधर उधर फैक देते हैं, अनर्थ दण्ड का सेवन करते हैं। टूटी के नीचे बैठकर न मालूम कितने पानी को विनष्ट कर डालते है। नदी और तालाब मे कूदकर जलीय जानवरो को नष्ट करते है। और जल के आपेक्षित सूक्ष्म जीवो का भी सहार करते है क्योकि उन्होने न पानी की कद्र की और न जीवो की। यदि वे थोडी भी पानी की कद्र करते और पानी के जीवो के प्रति हमदर्दी रखते तो पानी का दुरूपयोग नही करते। उन्होने पानी का ही दुरूपयोग नहीं किया परन्तु स्वय के जीवन की भी व्यर्थ मे बर्बादी की। पानी के जीवो की हिसा नही की, अपने आपकी हिसा की।

तू ही तुम्हारा हिंसक

वीतराग वाणी पर गहराई से चिन्तन करेगे तो ज्ञात होगा कि भगवान महावीर का स्पष्ट सकेत है–

तुम सि नाम सच्चेव ज हतव्व ति मन्नसि।
तुम सि नाम सच्चेव ज अज्जावेयव्व ति मन्नसि।

तुम सि नाम सच्चेव ज परितावेयव्व ति मन्नसि।
तुम सि नाम सच्चेव ज परिघेतव्व ति मन्नसि।
तुम सि नाम सच्चेव ज उद्दवेयव्व ति मन्नसि।

प्रभु ने इन अल्प शब्दावली रूप सूत्रो मे गहन–गम्भीर अर्थ भर रखा है। जिसे तू हनन योग्य मानता हे, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा मे रखने योग्य मानता है जिसे तू परिताप देने योग्य मानता हे वह तू ही है। जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है वह तू ही है। जिसे तू मारने योग्य मानता है वह तू ही है।

"जिसको तू मार रहा है वह तू ही है।" वह तू ही है। "वीतराग देव ने कितनी गहरी बात कही है। इस पर हम चिन्तन करे तो मनुष्य लापरवाह होकर, प्रमाद के वशीभूत होकर जिन प्राणियो का उपमर्दन करता है, हिसा करता है वहॉ उन प्राणियो की हिसा तो होती हे परन्तु साथ मे स्वय की भी हिसा होती है। आप कहेगे कि महाराज स्वय की हिसा कैसे? स्वय की हिसा कई तरह से होती है। प्राणो को नाश करना ही हिसा नही हे। ऐसे तो हिसा की परिभाषा उमास्वाति ने की है कि–

"प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपण हिसा।"

प्रमाद के योग से प्राणियो के प्राणो को नष्ट करना हिसा हे। प्राण दो तरह के हैं। दस प्रकार के प्राण तो द्रव्य प्राण है–

- श्रोतेन्द्रिय बल प्राण – जिससे हम शब्द सुनते हे।
- चक्षुइन्द्रिय बल प्राण – जिससे रूप देखते हैं।
- घ्राणेन्द्रिय बल प्राण – जो सुगन्ध ओर दुर्गन्ध की पहचान कराता है।
- रसेनेन्द्रिय बल प्राण – जो स्वाद का –खट्टे–मीठे आदि का अनुभव कराता हे।
- स्पर्शेन्द्रिय बल प्राण – जो ठण्डा, गर्म आदि स्पर्श का अनुभव करता है।
- मन बल प्राण – जिससे चिन्तन करते हे।
- वचन बल प्राण – जिससे हम बोलते है।
- काय बल प्राण – चमडी के नीचे का भाग जिससे त्वचा से स्पर्शादि का अनुभव करते हें।

श्वासोच्छवास बल प्राण और आयुष्य बल प्राण, ये दस प्राण हैं, जिसने दसो प्राण धारण कर रखे हैं उसकी हिसा करना। भाव प्राण है ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि। द्रव्य प्राणो की हिसा करने वाले को तो आप देखते है कि यह हिसा है। किसी की जबान को काट दे, नाक काट दे, प्राणो का अन्त कर दिया उसको तो पाप मानेते है। परन्तु भाव प्राणो को नाश किया – वह पाप है या नहीं? कभी प्राणी दूसरे प्राणी को मारता है तो वह दूसरे को मार रहा है परन्तु उसके साथ स्वय के भाव प्राणो को भी खत्म कर रहा है। जब कर्म बन्धन हो रहा है तो वे ज्ञान, दर्शन की शक्ति को दबाते हैं। वे ससार मे रूलने का काम करते है। इस प्रकार हिसक अपने भाव प्राणो को भी नष्ट करते है ऐसे व्यक्ति मनुष्य योनि को हारकर पशु योनि, नरक योनि मे चले जाते है।

समझिये स्व–पर जीवन को

प्रभु ने कहा वह तहमेव सत्य है। जब कोई मारता है तो दूसरे को मारने के लिए क्रूर भावना तो मन मे आती है। मन मे इस क्रूर भावना का पायजन–जहर आता है वह स्वय के लिए भी घातक बनता है। जो व्यक्ति दूसरे को मारने के लिए तैयार हो जाता तो स्वय को मारने मे भी देरी नही करेगा। ऐसे मनुष्य ने न स्वय की और न अन्य के प्राणो की कद्र की। देखिए। एक बूद पानी मे असख्य जीव है इसका ख्याल नही करता है। सरक्षण नही करता है, वह ऐसे ही बहता हुआ चला जाता है।

कल्पना कीजिये। मनुष्य प्यासा है और वही पानी उसे मिल जाता है तो प्राण सुरक्षित हो जाते है और वह पानी महत्वपूर्ण हो जाता है। उसी पानी का मूल्याकन है और उसका महत्व बढ जाता है। इसलिए पानी की कभी–कभी कुछ परिस्थिति इधर उधर होती है तो पानी पर भी कन्ट्रोल लगाया जाता है। नल भी समय पर आता है। फिर भी मनुष्य कद्र नही करता है जबकि उसकी सुरक्षा करनी चाहिए। मनुष्य अपने आप पर कन्ट्रोल नही करता है तो उसकी दुर्दशा होती है। यदि मनुष्य अपने जीवन को दूसरो के कल्याण मे लगाता है।, दूसरो के उपकार मे लगाता है तो उस व्यक्ति का जीवन महत्वपूर्ण बनता है। पुरूष शक्तिशाली बनता है तो वह अपनी और दूसरो की भी रक्षा करता है। मनुष्य जीवन का जो नदी के प्रवाह से

भी अधिक मूल्याकन करता है, वह मनुष्य विशेष वन्दनीय और पूज्यनीय बनता है और दुनिया की निगाह मे चमक जाता है।

श्रेयांसि बहु विघ्नानी

श्रेयस् कार्य मे विघ्न बहुत आते है। बुरे कार्य मे विघ्न नही आते है। अच्छा कार्य करने को जायेगे तो अनेक विघ्न आकर खडे हो जायेगे। यदि कोई बहिन दीक्षा लेने को तैयार होती है तो जो सम्वन्धी नही है वे भी सम्बन्धी बनकर खडे हो जायेगे और रोकने की चेष्टा करेगे। क्योकि वे स्वय सयमी जीवन का महत्त्व नहीं समझते हें। दूसरे को भी नहीं समझा सकते हे। इसलिये बाधक बनकर उसको ससार मे भटकाने वाले बनते हैं। तो वह उस बहन की घात करता हे सो तो करता ही हे परतु स्वय की घात भी करता है। आप कहेगे ससार मे रोकने से क्या घात हे ? तो उसकी रोकने वाले की भावना हे कि यह ससार के विषयो का सेवन करे, पाच इन्द्रियो का सेवन करे, अब्रह्मचर्य मे रहे तो इससे दसो प्राण और भाव प्राण भी नष्ट होते हें तो आप मनोविज्ञान की दृष्टि से चिन्तन करे।

डॉक्टर लोगो से ओर प्रत्यक्ष अनुभव से चिन्तन करे कि वच्चा जन्मता है तो उसका शरीर कितना तेजस्वी और स्फूर्ति वाला होता हे। ओर जवानी मे होता हे तो कुम्हलाने लगता है। उसकी केसी स्थिति वन जाती है ? उसने अपने जीवन का मूल्याकन नही किया। पशु से भी वदतर कार्य करने लगा ओर उसमें ज्यादा लगता हे तो बल प्राण भी क्षीण होता हे। जो सबल बनाने वाला तत्त्व है—वल प्राण। यह शरीर का राजा हे। शुद्ध विचारो के साथ वह व्यक्ति अपने जीवन को महत्त्व देता हे। पर गृहस्थाश्रम मे रहने वाले, जिसने इसका मूल्याकन समझा हो तो वह बाधक नही बनता है। वह तो सोचता हे कि मॅ साधु नही बन सकता हू तो क्या हुआ । मॅने अपने आपको ससार के कीचड मे फसाया तो क्या। परन्तु यह इस मोह से छूटने के लिये जाती हे तो मैं इस शुभ कार्य मे बाधक क्यो वनू ? परन्तु ससार के विषयो का सेवन करने वाला सोच नही पाता कि हमने क्या किया ? यह भी नही सोच पाता कि मै इसे क्यो रोकू ? यह ऊर्ध्वगामिनी वन रही है, आत्मा का समीक्षण कर रही हे तो मॅ सहायक बनू ओर भावना मे वेग दू, क्योकि जितना जीवन मे अधिक सयम रखा जाये जीवन मे ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय उतनी ही जिन्दगी

अधिक हरी–भरी रहेगी और आगे बढ सकेगी और जितनी आयु लेकर आया है तो उसका उपभोग कर सकेगा। परन्तु अन्तराय डालने वाले अच्छे कार्य मे खडे होते है। बुरे कार्य मे खडे नही होते है। यदि वही कन्या कॉलेज मे पढते–पढते दूसरे सग मे चली गई और बिगड गई तो बहिने सकेत देती है कि क्या करे। आप सरक्षक होकर उसकी रक्षा नही कर सकते हैं तो अभिभावको की ही गलती है कि ऐसी शिक्षा मे डाला ।

यह पाश्चात्य शिक्षण मनुष्य के लिये कितना घातक बन सकता है ? वहा तो मनुष्य जीवन का भी विशेष मूल्याकन नही है परन्तु जिन्होने वीतराग देव की वाणी सुनी तो कम से कम वे इतनी तो रोशनी रखे कि हमारी सन्तान कहीं गैर रास्ते पर तो नहीं जा रही है। अब्रह्मचर्य की तरफ जा रही है कि असस्कारो की तरफ जा रही है। आगे जाकर इसके जीवन की क्या दशा बनेगी ? सात पीढियो पर लाछन तो नही लगेगा, धब्बा तो नही लगेगा ? किन्तु बुरे कामो मे रत को कोई रोकने वाला नही मिलेगा। बच्चा जाय जिधर जाने दो, ऐसा सोचते है। इसीलिए ज्ञानियो ने कहा है कि श्रेय कार्य मे विघ्न आते है परन्तु धर्मी मनुष्य इसमे विघ्न नही डालते हैं वे तो सहर्ष इसमे लगाते है।

महाप्रयाण गणेशाचार्य का

जहा बडे बडे तीर्थंकर देव–भगवान् महावीर जैसे उनको भी निकाचित कर्मो ने नही छोडा। केवलज्ञान, केवलदर्शन पैदा हो गया उस समय भी खून की दस्ते लगी और औषधि सेवन करना पडा। तीर्थंकरो को भी कर्म नही छोड सकते है तो अन्यो को कैसे छोड सकते है। कर्म उदय मे आने पर सम्पर्क अच्छा रहे, जीवन की साधना ठीक बन जाए तो अन्तिम समय भी ठीक बन सकता है।

स्व आचार्य श्री गणेशीलालजी म को मै अन्तिम समय मे देख पाया। ऐसे ही पूज्य श्री जवाहरलालजी म को भी अन्तिम समय ही देख पाया। स्व गणेशाचार्य को इतनी वेदना आयी कि उसे महापुरुष ही बर्दाश्त कर सकते है। वे ज्ञानी थे, उन्होने वेदना के स्वरूप को समझा और साधु जीवन की अन्तिम अवस्था को कैसे सुधारना और श्रेयस कार्य को कैसे करना, विघ्न बाधाओ कैसे दूर करना–इसका उन्हे अनुभव था और अनुभव की दृष्टि जब सामने

आयी तो बडे-बडे डॉक्टर आश्चर्य चकित हो गये।

उदयपुर मे बहुत समय तक विराजमान रहने से डॉक्टर शूरवीरसिहजी सा, वैसे वे जाति से माली थे परन्तु आचार्य श्री के त्याग-वैराग्य को देखकर बडे श्रद्धान्वित हो गये। एक दिन उनको आचार्य श्री जी ने भी कह दिया कि आप रोजाना क्यो कष्ट उठाते हैं ? जब कभी जरूरी होगा तो देख सकते हैं। डॉक्टर सा कहने लगे कि आपके भक्त रोजाना क्यो आते हैं ? मैं क्या आपका भक्त नहीं हूँ ? मैं आपके चरणो मे पहुचता हूँ तो मुझे शान्ति मिलती है। उनका सन्तो के प्रति इतना आकर्षण हो गया कि उनकी वही भावना अभी तक बनी हुई हे। आचार्य श्री जी तो स्वर्गवास पहुच गये, परन्तु मुझको भी सम्भालते रहते हैं। आचार्य श्री के प्रति उनका आकर्षण कैसे बना कि जो भयकर वेदना थी, उसका इलाज किया, ऑपरेशन किया। डॉक्टरो का सिद्धात हे कि ऑपरेशन के बाद जिनके कैंसर की दृष्टि से सैकिण्ड फार्म हो जाता हे तो छ सात महीने से ज्यादा उसका जीवन नहीं रह सकता हे। आचार्य श्री के तो छ महीने तो निकले ही परन्तु दो साल भी निकल गये। बम्बई के टाटा हॉस्पीटल के एक बडे डॉक्टर बोरजस ने लिखा कि अपनी परिस्थिति से तो छ महीने से ज्यादा जिन्दा नही रह सकते हैं परन्तु दो साल हो गये हैं तो अपना सिद्धात तो फेल हो चुका है। वहा जाकर कोई देखे तो कहते हैं कि कौन कहता हे कि आचार्य श्री बीमार हैं वे तो अपनी वेसी ही मुद्रा मे विराजमान हैं। यह तो महात्मा की कोई विशेष शक्ति हे। डॉक्टर शूरवीरसिहजी सा दर्शन को आते तो प्रसगोपात चित्रण किया कि बम्बई से भी रिपोर्ट आई हे। बोरजस की रिपोर्ट देखकर एक बार डॉक्टर रामावतारजी दर्शन को आये और कहने लगे आचार्य श्री ! मैं ऐसी ओषधि दूगा कि जिससे आपकी तबियत ठीक हो जायेगी। आचार्य श्री ने कहा कि मैं ने आवश्यकतानुसार ओषधि ली परन्तु मैं तो अब अपनी औषधि लेकर चल रहा हूँ, यह सुनकर डॉक्टर सा अवाक् रह गये। वे बात नही कर सके। तो मेरी प्रकृति है वेसे ही एकान्त मे उनसे पूछा कि डॉक्टर सा ! कैसा लगता हे ? डॉक्टर रामावतार सा कहने लगे कि हम और आप क्या सोचते हैं। इन्होने जो साधु जीवन स्वीकार किया है वे इसमे तन्मय हो गये है। वे दु ख को दु ख नही समझते हैं। अमेरिका का पोप बीमार था-केसर का। परन्तु इतना चिल्लाता था कि दूसरे मरीजो को सोने नहीं देता था। मार्फिया इन्जेक्शन बार-बार लगाना पडता था। ओर ये महात्मा जिस पर

हमारी कोई औषधि नही, इन्जेक्शन नही और फिर भी इतनी प्रसन्नता के साथ विराजमान है।

डॉक्टरी सिद्धान्त की दृष्टि से चितन करेगे तो हजार बिच्छु काटने पर जो वेदना होती है उससे भी अधिक वेदना होती है इनको परन्तु ये महात्मा शान्त चित्त से विराजमान है। समाज के लोग सोचने लगे कि कब आप श्री का यह जीवन चला जाए अत सथारा करा देना चाहिए। डॉक्टरो से पूछा कि कितने दिवस का जीवन है ? तो कहा कि 72 घटे से ज्यादा नही निकाल सकते हैं। और फिर कहने लगे कि अडतालीस घटे से ज्यादा नही निकाल सकते है। फिर वे तो कहने लगे कि आप जैसा ठीक समझो वैसा करो। फिर उस समय सूरजमलजी म विराजे हुए थे और मैं भी था– आचार्य श्री होश–हवास मे थे। वे कहने लगे कि मुझे सथारा कराओ। सथारा करने के पूर्व नब्ज की गति देखी जाती है और सथारे का प्रसग लगता हो तो सथारा कराया जाता है। क्योकि मैंने देखा था कि तीन वर्ष से भी कुछ अधिक पहले आचार्य श्री भोपाल मे विराज रहे थे उस समय अचानक पच्चक्खाण के पश्चात् वे बेहोश हो गये थे। उस समय मै ने सागारी सथारा तो करा दिया परतु नब्ज ठीक चल रही थी इसलिए सागारी सथारे मे ही रहे। चतुर्विध सघ के जो अगुवा थे वे कहने लगे कि अब सथारा पच्चक्खा देना चाहिए। मैं ने कहा कि नब्ज तो ठीक चल रही है तो कैसे पच्चक्खाया जाए। कई लोगो ने कहा कि आप को आचार्य श्री से मोह है, इसलिए नही पच्चक्खा रहे है। शूरवीरसिहजी डॉक्टर सा को कहा तो कहने लगे कि हमारी थ्योरी तो फेल होती जा रही है। पूछा कि नब्ज तो ठीक चल रही है ? मैने कहा कि ठीक चल रही है। होश मे आयेगे या नही? तो कहा कि मै कुछ कह नहीं सकता हूँ। आखिर तीन दिन तक मूर्च्छा रही और फिर स्वस्थ हुए और तीन साल से अधिक बिराजे। और जब अब यहा सथारा कराने के लिए कहा तो नब्ज मे कमजोरी थी। गुरुदेव ने फरमाया – सथारा पच्चक्खाओ और स्वय विधि बताने लगे कि पहले यह करो फिर ऐसा करो। मैं उनके कथनानुसार करता गया। गुरुदेव ने जावजीव का सथारा बडी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया।

सथारा पच्चक्खाने के बाद शास्त्र का पाठ सुनाया जाता है–दशवैकालिक–मैं सुना रहा था, दर्शनार्थी दूर से दर्शन करके

निकल रहे थे। मेरी दृष्टि उधर चली गई, जिससे जो गाथा सुना रहा था उसका पुन उच्चारण हो गया। तब आचार्य श्री कहने लगे कि यह गाथा तो हो गई। कहने का मतलब कि इतना होशहवास था। ओर फिर मूल पाठ का उच्चारण करके विधि करादी। सब सतो को हटा दिया। ओर मे बेठा हुआ था। आचार्यश्री ने अपनी ध्यान मुद्रा लगायी। दूर से सब उनकी मुद्रा को देख रहे थे। उनकी मुद्रा मे अपूर्व सा दृश्य दिखाई दिया। मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता हूँ। मैं सोचता हूँ कि ऐसी आचार्य श्री की स्थिति ओर मे ने सथारा पच्चक्खा दिया तो अब क्या स्थिति बनेगी। अब चलने लगा सथारा। दूसरे दिन जब ढाई बजे के करीब पुष्कर मुनि जी की सतिया पहुची, सरल स्वाभाविनी श्री सोहनकवरजी म ने वदना की, साता पूछी ओर खमतखामणा किया। लगभग तीन बजे की स्थिति आई ओर आचार्य श्री आसन जमाने लगे। मानो अतिम आसन जमाने की चेष्टा कर रहे थे परतु शारीरिक स्थिति इतनी कमजोर हो गई थी कि टिक नही पा रहे थे। सथारे की दो विधिया हे। कोई लेटकर ओर कोई बेठकर भी कर सकते हें। मे ने कहा कि आपका शरीर इतना कमजोर हो चुका हे कि आप लेटकर ही क्रिया करे। वे लेटे ओर ध्यान की धारा मे ही लीन हो गये। मैं खडा–खडा कुछ कान मे सुना रहा था। क्योकि दीक्षा मे ज्येष्ठ नीचे विराजे हुए थे इसलिए मे खडा रहा। मैने कहा आप भी पाटे पर विराज जाए। तो मे भी पाटे पर बेठकर सुनाऊँ। उस समय का दृश्य अलोकिक–सा था। मैं उनके नेत्रो का प्रवाह देखता रहा वह शब्दो से नही कह सकता हूँ, वह अनुभवगम्य हे। उस समय गुरुदेव ने बडी धेर्यता के साथ, शाति के साथ प्रशात अवस्था मे अपना अतिम श्वासोच्छ्वास छोडा। उनतीस घटे का सथारा आया था। ऐसा सथारा ऐतिहासिक पन्नो मे भी देखने को कम मिलता हे। स्फटिक के समान ह्दय था, सरल स्वभाव था। अतिम समय मे सावधानीपूर्वक सलेखना सहित शरीर छूटता हे तो उस जीवन का मूल्याकन होता हे।

बधुओ! ऐसे महापुरुषो का आदर्श हमारे सामने आता हे उससे प्रेरणा लेनी चाहिए।

अभी जिन महासतीजी के स्वर्गवास विषयक समाचार मिले हे अत व्याख्यान के रूप मे आज व्याख्यान नही रखा गया [illegible] आदर्शमय सयमी जीवन होता हे उसके [illegible] ही [illegible] होता हे। यह कोई सहज बात नही हे। [illegible]

कि एक दिन के लिए सचित्त का त्याग करके चले तो उसे भी कठिनाई महसूस होगी। जीवन मे त्याग करके चलना और सारी चीजो से मन को मोडना, भरी जवानी मे दीक्षा लेने और रोग मे भी समता के साथ जीवन को छोडना कितनी बडी बात है। वक्ता लोग महासतीजी के जीवन के सबध मे प्रेरणाप्रद बाते रख गये हैं। यह मनुष्य जीवन बार–बार मिलने वाला नही है। आप ख्याल रखे और आप भी इस प्रकार से साधने की चेष्टा करे। श्रावक के भी तीन मनोरथ हैं।

सच्ची धर्म सहायिका–मदन रेखा

मदन रेखा ने अतिम समय मे अपने पति के सिर को बाधा और पति की तरफ ध्यान लगा कर पति को सथारा पच्चक्खाने की तरफ ध्यान दिलाने लगी– पतिदेव ! यह अतिम अवस्था राग द्वेष मे चली गई तो यह जिदगी बिगड जाएगी। मैं धर्मपत्नी के रूप मे हूँ और पत्नी वही है कि पति के अतिम समय को सुधार दे और जो पत्नी अतिम समय को बिगाड देती है और सथारा सलेखना नही कराती है तो वह उसकी जिदगी को बिगाड देती है। मदन रेखा रोने–धोने मे नहीं बैठी परतु पति को चार शरण दिये और पति को स्वर्ग भेज दिया। यह स्थिति कब आ सकती है कि जब कि वह मनोरथ का ध्यान रखे। तीसरा मनोरथ है कि पडित मरण करके मै अतिम जीवन को सुधारूँ।

इस प्रसग से जो भी भव्य आत्मा मनोरथ का चितन करती हुई, समीक्षण धारा मे वहती हुई अतिम समय मे बाह्य–आतरिक शुद्धि पूर्वक पडित मरण के साथ भौतिक देह पिड का त्याग करती है, वह अपने जीवन को सार्थक करती है। □□

भौतिकता और आध्यात्मिकता समीक्षण

- भौतिक और आध्यात्मिक
- भौतिकता आध्यात्मिकता की एकातता से सघर्ष
- एकातता का समाधान
- आध्यात्मिकता मे आवश्यकता भौतिकता की
- कर्म निर्जरण के दो मार्ग
- लक्ष्य आध्यात्मिकता हो

जे अज्झत्थ जाणइ ते वहिया जाणइ

—आचाराग सूत्र 1/1/14

जो अपने आपको जानता है, वह बाहरी रूप को भी जान लेता है।

अर्थात् जो अध्यात्म को सही रूप मे जान लेता है, समझ लेता है, वह साधक भौतिकता का भी यथार्थ विज्ञान कर लेता है अध्यात्म के चरम विकास हेतु भौतिकता के साथ यथायोग्य सामञ्जस्य होना अनिवार्य है।

शरीर भौतिक है तो आत्मा अभौतिक अध्यात्म से सम्बन्धित है परिपूर्ण मुक्ति हुए बिना शरीर के बन्धन से आत्मा की मुक्ति नहीं हो सकती।

दु ख विमुक्ति व सुख अवाप्ति के लिए इनका ज्ञान आवश्यक है।

श्री श्रेयास जिन अन्तरयामी, आतम रामी नामी रे।
अध्यातम मत पूरणपामी, सहज मुक्ति गति गामी रे।।

बन्धुओ ! मनुष्य जीवन की, जो वर्तमान की इकाई है। उसके शरीर पिण्ड को अलग–अलग रूप से सब देख रहे हैं और यह जानते है कि यह मनुष्य है। सभी मनुष्यो के पाच इन्द्रिया हैं, और सभी सन्नी मनुष्यो के मन भी सलग्न हैं। इस शरीर पिण्ड को सब देखते है, परतु देखने–देखने मे अतर आता है, एक व्यक्ति सिर्फ शरीर के ऊपर आकार–प्रकार को देखकर, और उसका मूल्याकन करता है, कीमत करता है। दूसरा व्यक्ति सिर्फ आकार–प्रकार तक ही सीमित नही रहता। उसकी दृष्टि आकार–प्रकार से भिन्न शरीर के भीतरी तत्वो की तरफ जाती है। शरीर के ऊपर मे कोई विशेष तत्व दृष्टिगत नही होते। ऊपर इन्द्रियो का आकार और त्वचा–चमडी दिखती है। परतु शरीर के भीतर मे बहुतेरी रचनाए हैं। भीतर का दृश्य देखने मे कठिनाई अवश्य है। परतु जीवन का वास्तविक स्वरूप भीतर मे है। घडी के आकार को आप सभी देख रहे है। परतु इस ऊपर की आकृति का उतना महत्त्व नही है जितना इस घडी के भीतर के कल–पुर्जो का महत्त्व है। परतु जाने दीजिए घडी के कल–पूर्जो को, उसे सचालित करने वाला कोई अलग व्यक्ति है। वैसे ही इस शरीर की रचना करने वाला कोई अलग व्यक्ति है। वैसे ही इस शरीर की रचना करने वाला शरीर के भीतर कल–पुर्जो के तुल्य आभ्यन्तर रचना करने वाला और उसको सचालित करने वाला कर्ता इस शरीर के भीतर विद्यमान है।

भौतिक और आध्यात्मिक

प्रचलित ससार मे दो शब्द आपको श्रवण करने को मिल रहे है और वह भी मुख्यतया आध्यात्मिक क्षेत्र मे– एक भौतिक और दूसरा अभौतिक। अभौतिक को आप आध्यात्मिक कह सकते हैं। इन शब्दो के श्रवण करते–करते चितनशील व्यक्ति के मस्तिष्क मे जिज्ञासा पैदा होती है, और वह जानना चाहता है कि भौतिक क्या है और अभौतिक

क्या हे ? शब्द मात्र से हर कोई व्यक्ति अर्थ नहीं समझ सकता हे। वह उसके अर्थ को समझने की चेष्टा करता हे। युवक वर्ग मे भी यह जिज्ञासा अवश्य प्रस्फुटित होती हे कि जहा हम धर्मक्षेत्र मे आध्यात्मिक शब्द श्रवण करते हें– जहा पुस्तको मे भी आध्यात्मिक शब्द का बहुतेरा प्रयोग होता हे तो यह आध्यात्मिक चीज क्या हे ? ओर भोतिकता क्या हे ? आप इस विषय को जरा ठीक तरह से समझे। ऐसे आम प्रचलित भाषा मे पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु ओर वनस्पति ये भैतिक तत्व की स्थिति मे लिए जाते हे । शास्त्रीय दृष्टि से जब पृथ्वीकायिक शब्द का प्रयोग होता हे तो पृथ्वी मे रहने वाले जीवन हें, वे इस शरीर से सम्बन्धित होते है । परन्तु आम जनता पृथ्वी मे जीव नहीं जानती है, वह इन पाच भोतिक तत्वो से सारे विषय को समझने की चेष्टा करती हे। इन्ही पाच भोतिक तत्वो से ये सारे दृश्य पदार्थ आपके सामने आये हें। कभी मनुष्य को अन्न की आवश्यकता हे, तो वह पृथ्वी पिण्ड से अन्न का उपार्जन करता हे। पृथ्वी तत्त्व से जो रस अन्न के रूप मे, दाने के रूप मे आया, वह देश से पृथ्वी का भाग हे, उसका रस हे। उसी रस से जीवन निर्वाह करने वाले उसको ग्रहण करते हें ओर अपने जीवन का निर्माण करते हे। पानी की प्यास लगने पर व्यक्ति पानी की तरफ जाता हे आर प्यास बुझाता हे। हवा से ऑक्सीजन लेता हे ओर वनस्पति भी पृथ्वी रस का परिणाम हे। अन्न–जल ओर सारे निर्वाह सम्बधी पदार्थ हे व पृथ्वी से पैदा होने वाले हैं। वे सारे भोतिक तत्त्व हें। इसी पृथ्वी से खनिज पदार्थ ओर इसमे सोना चादी जवाहरात की पदायश इन्ही तत्त्वो के अन्तर्गत वेज्ञानिक ओजारो का प्रादुर्भाव, जहा जितनी धातुए हे वे सब पृथ्वी से–जमीन से निकलती हे। इन्ही के मिश्रण से रासायनिक

पदार्थों की तरफ ही है और सब कुछ इनको ही मानते हैं वे भौतिकवादी कहलाते हैं, अर्थात् वे उसी को महत्त्व देते हैं परन्तु इससे भिन्न तत्त्व को महत्त्व नही देते। जबकि दूसरी ओर इन तत्त्वो का निर्माण करने वाला निर्माता है, वह इन भौतिक तत्त्वो से अलग है। घडीसाज घडी से भिन्न है, नियोजन करने वाला नियोजन से अलग है, टीन शेड का निर्माण करने वाला टीन से अलग है, तथा कार चलाने वाला, कार का निर्माण करने वाला इजीनियर कार से अलग तत्त्व है। इस ज्ञान, विज्ञान की शक्ति को लगाने वाला तत्त्व है आत्म तत्त्व। उसी को अभौतिक कह सकते हैं। वह आत्मा अभौतिक तत्त्व बाहर नही रहती परतु शरीर पिण्ड के भीतर विद्यमान है। जब वह शरीर मे रह रही है तो उसके गुणधर्म शरीर मे ही हैं। ज्ञान शक्ति इस आत्मा की है। सदाचरण करना, सदाचार पालना, सत्य बोलना, अहिसा का पालन करना, ये आत्मा के गुण हैं। जो इन आत्म गुणो को लेकर चलता है, वह आध्यात्मिक कहलाता है।

"आत्मनिअधि इति अध्यात्म तत्र भव आध्यात्मिक।"

'आत्मनि' का अर्थ है, आत्मा मे होने वाली चित्तवृत्तिया आध्यात्मिक कहलाती है। ये चित्तवृत्तिया शरीरधारी आत्मा की यथास्थान अभिव्यक्ति पर निर्भर है। इसको सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि भीतरी चैतन्य अवस्था की जो क्रिया–प्रतिक्रिया है, वह आध्यात्मिक कहलाती है। जो इस अध्यात्म का कथन करते है वे अध्यात्मवादी कहलाते है। और जो भौतिक तत्त्वो का कथन करते है वे भौतिकवादी कहलाते है। मै जो प्रार्थना कर गया हूँ वह अध्यात्म जीवन को पुष्ट करने वाली है।

श्री श्रेयास जिन अन्तरयामी आतमरामी नामी रे।
अध्यात्म मत पूरण पामी सहज मुक्ति गति गामी रे।।

जिन्होने अध्यात्म तत्त्वो को पा लिया वे सहजगामी, मुक्तिगामी बन गये।

भौतिकता आध्यात्मिकता की एकांतता से संघर्ष

तत्वों का सही रूप नहीं समझने के कारण ही उलझनें पैदा होती हैं, कोई कहता है कि मैं आध्यात्मिक तत्त्व को ही मानता हूँ, कोई भौतिकता को ही मानता है। अध्यात्मवादी कहता है कि भौतिक तत्त्व कुछ नहीं है, अध्यात्म अलग है भौतिक अलग है जबकि भौतिकवादी कहता है भौतिक तत्त्व ही है। और हम देख रहे हैं कि आध्यात्मिक नाम का तत्त्व नहीं है। इन दोनों का जब एकांत दौर-दौरा चलता है, तो वहां संघर्ष बढ़ता है, क्लेश बढ़ता है लड़ाई झगड़ा बढ़ता है, दंगा फसाद बढ़ता है, हिंसा का जन्म होता है और झूठ-प्रपंच होता है। यह सारी की सारी द्वन्द्वात्मक परिस्थिति मनुष्य के सामने खड़ी हो जाती है। इन सबको देखते हुए व्यक्ति कुछ निर्णय नहीं कर पाता है।

एकान्तता का समाधान

भगवान महावीर और तीर्थंकरों ने इन दोनों का सही स्थान बताते हुए इनके साथ संघर्ष और विग्रह नहीं करने का निर्देश दिया। दोनों संसार में हैं और दोनों पड़ोसी यदि शांति से रहते हैं तभी उनका जीवन आगे प्रगति कर सकता है। यदि पड़ोसी-पड़ोसी लड़ने लग जाएं तो उनका जीवन शांति के साथ आगे नहीं बढ़ सकता है, वैसे ही भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पड़ोसी हैं।

आचारांग सूत्र में स्पष्ट कहा है-

'जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ'

यद्यपि यह विषय गहन है तथापि बन्धओ ! इस विषय से आप घबराइये मत। ऐसे विषय को समझे बिना आध्यात्मिकता का रस नही पा सकेगे। जब तक आप मूल तत्त्व को नही पकडेगे तब तक आप जीवन मे आनन्द की अनुभूति नही कर पायेगे। ऊपर–ऊपर से पपोलने से कुछ नही होगा। भीतर मे प्रवेश करना होगा। जीवन का समीक्षण करना होगा।

आध्यात्मिकता में आवश्यकता भौतिकता की

रात्रि मे मेरे सामने प्रश्न आया था, और आज लिखित प्रश्न भी आया है कि भौतिक और आध्यात्मिक क्या है ? इनका सम्बध है या नही, है तो कैसे ? सभी को सरलता से समझ मे आ जाए अत आज का प्रवचन ही इसी विषय पर चल रहा है। भौतिकता क्या है ? और आध्यात्मिकता क्या है ? और इनमे जो सघर्ष चल रहा है, धार्मिकता मे कभी ऐसा प्रसग आता है कि भौतिकता की बात ही मत करो और जहा भौतिकतावाद की बात हो तो वहा प्रसग बनता है कि आध्यात्मिकता का नाम मत लो। यही आकर सघर्ष बनता है, परतु वे नही समझ पा रहे है कि जहा हम आध्यात्मिकता मे बैठे हुए हैं, वहा भौतिकता की आवश्यकता है या नहीं ? आप लम्बे–चौडे क्यो जाए, मै यही बतादूँ। आप किस स्थान पर बैठे हुए है ?

जमीन पर।
तो यह भौतिक है या अभौतिक ?
भौतिक।
इसके बिना क्या आप धर्म कर सकेगे ?
यह छप्पर भौतिक है या अभौतिक ?
भौतिक है।

आप धार्मिक स्थान पर भौतिकता से काम कर रहे हैं, फिर उसका विरोध भी करने लग जाए तो कैसे काम बन सकता है ? यह चादर जो शरीर पर धारण कर रखी है यह भी भौतिक है, आप ठीक

तरह से बैठे हुए हैं, यहां आप व्याख्यान चुस्ती से सुन रहे हैं तो कुछ प्रातःकाल भौतिक तत्त्व ग्रहण करके आये हैं अर्थात चाय दूध नाश्ता लेकर आये हैं तभी तो सुन रहे हैं। यह शरीर भी भौतिक तत्त्वों का बना हुआ है। उसी में आत्मा रही हुई है। भौतिक और आध्यात्मिक का कैसा संगम बना हुआ है फिर संघर्ष और विग्रह करने की आवश्यकता क्या है? सोचना चाहिए भौतिकता से हम पल-पल में काम ले रहे हैं। अहिंसा परमो धर्म की पालना करने के लिए जो मामा हाथ में ले रखा है लकड़ी ओघा सब भौतिक है और इनसे आध्यात्मिकता का पालन कर रहे हैं। इस शरीर के प्रत्येक अवयव में भौतिक तत्त्व मौजूद हैं। तो उनके साथ क्या हम संघर्ष-विग्रह करके चलें कि हमको भौतिकता की आवश्यकता नहीं है। यदि ऐसा है तो किसी भी क्षेत्र में काम नहीं चल सकेगा। आप दिन और रात किसके लिए जुटे हुए हो? आपके बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें और उनमें रेडियो, टेलीविजन, फर्नीचर सजे हुए हैं ये सब भी तो भौतिक हैं और इनसे आप जुड़े हुए हो। फिर कथन से कहो कि इनका हमारे साथ कोई वास्ता नहीं तो यह समन्वय की बात नहीं हुई एकांत खींचने की बात हुई। भगवान महावीर ने कहा- इनको इनके स्थान पर समझो और धर्म को धर्म की जगह समझो। इनको स्वामी मत बनने दो। सिर पर मत चढ़ने दो। और यदि मान लिया कि भौतिक ही सब कुछ है आध्यात्मिक कुछ नहीं है और कोई कहे कि आत्मा ही सब भ्रम है

किसी का हाथ पत्थर की शिला के नीचे दव गया हे तो एक दम झटका देकर इन्सान निकालना चाहे तो क्या दशा वनेगी ? परन्तु चतुर व्यक्ति धीरे–धीरे निकालेगा। इसी प्रकार कर्मो की शिला के नीचे आत्मा की शक्तिया दव गई है। उन्हे धीरे–धीरे निकालने का प्रसग है।

कर्म निर्जरण के दो मार्ग

कर्म का निर्जरण करने के लिए दो रास्ते वतलाए हैं। एक रास्ता शीघ्रगामी है– साधु बनकर चले और दूसरा है मदगति का यानी गृहस्थ मे रहते हुए श्रावक बनकर चले। जीवन की प्रत्येक क्रिया के साथ आध्यात्मिकता का पुट लगाकर चले। जो सबसे पहले भोजन करता है और बाद मे बैठकर देखे कि भोजन कैसा है ? वह मन के अनुकूल है या प्रतिकूल ? यदि प्रतिकूल हो तो रोष करूँ और अनुकूल हो तो खुश होऊँ। यह नही सोचकर यह सोचे कि यह जीवन निर्वाह का साधन है। मैं इसको ग्रहण करके आध्यात्मिक साधना करूँ। श्रावक जीवन की आराधना करूँ, साधु जीवन आध्यात्मिक साधना करूँ। श्रावक जीवन की आराधना करूँ, साधु जीवन की आराधना करूँ। इस दृष्टि से साधक क्रिया कर रहा है, भोजन ग्रहण कर रहा है तो वह आध्यात्मिकता का ही विचार नही रखता है। वह यह सोचता है कि मेरा शरीर पुष्ट बने, मै राजनेता भी बनू परतु लक्ष्य रूप से यही रहता है कि आध्यात्मिकता ही सबकुछ है। परतु इन भौतिक तत्वो की तब तक ही सहायता लेनी है जब तक मैं सम्पूर्ण रूप से कर्म का विनाश नही कर पाऊँ।

लक्ष्य आध्यात्मिक हो

दुनिया मे कहावत है कि 'कण–कण करता मन होता है और बूद–बूद करके घडा भरता है।' एक–एक कण सचित करते हैं तो मन (40 सेर) हो जाता है और एक–एक बूद मे घडा भर सकता है। लक्ष्य तो आध्यात्मिकता का रहे और प्रत्येक क्रिया मे आध्यात्मिकता को

किसी का हाथ पत्थर की शिला के नीचे दव गया है तो एक दम झटका देकर इन्सान निकालना चाहे तो क्या दशा वनेगी ? परन्तु चतुर व्यक्ति धीरे–धीरे निकालेगा। इसी प्रकार कर्मो की शिला के नीचे आत्मा की शक्तिया दब गई है। उन्हे धीरे–धीरे निकालने का प्रसग है।

कर्म निर्जरण के दो मार्ग

कर्म का निर्जरण करने के लिए दो रास्ते बतलाए हैं। एक रास्ता शीघ्रगामी है– साधु बनकर चले और दूसरा है मदगति का यानी गृहस्थ मे रहते हुए श्रावक बनकर चले। जीवन की प्रत्येक क्रिया के साथ आध्यात्मिकता का पुट लगाकर चले। जो सबसे पहले भोजन करता है और बाद मे बैठकर देखे कि भोजन कैसा है ? वह मन के अनुकूल है या प्रतिकूल ? यदि प्रतिकूल हो तो रोष करूँ और अनुकूल हो तो खुश होऊँ। यह नही सोचकर यह सोचे कि यह जीवन निर्वाह का साधन है। मैं इसको ग्रहण करके आध्यात्मिक साधना करूँ। श्रावक जीवन की आराधना करूँ, साधु जीवन आध्यात्मिक साधना करूँ। श्रावक जीवन की आराधना करूँ, साधु जीवन की आराधना करूँ। इस दृष्टि से साधक क्रिया कर रहा है, भोजन ग्रहण कर रहा है तो वह आध्यात्मिकता का ही विचार नही रखता है। वह यह सोचता है कि मेरा शरीर पुष्ट बने, मैं राजनेता भी बनू परतु लक्ष्य रूप से यही रहता है कि आध्यात्मिकता ही सबकुछ है। परतु इन भौतिक तत्वो की तब तक ही सहायता लेनी है जब तक मैं सम्पूर्ण रूप से कर्म का विनाश नही कर पाऊँ।

लक्ष्य आध्यात्मिक हो

दुनिया मे कहावत है कि 'कण–कण करता मन होता है और बूद–बूद करके घडा भरता है।' एक–एक कण सचित करते हैं तो मन (40 सेर) हो जाता है और एक–एक बूद मे घडा भर सकता है। लक्ष्य तो आध्यात्मिकता का रहे और प्रत्येक क्रिया मे आध्यात्मिकता को

देखने की चेष्टा करनी चाहिए। आप कपडे की दूकान पर कपडा बेच रहे हो, तो कोई ग्राहक आया, चाहे गरीब हो या पैसे वाला हो, परतु आप सोचे कि यह भी मेरी आत्मा के तुल्य है। यह बेसमझ है तो क्या हुआ ? मै उसे ठगू नही। यदि इस प्रकार आप आध्यात्मिक दृष्टि से व्यापार कर रहे है तो पुण्यवानी वहा भी बाध लेते है। आध्यात्मिक साधना आसानी से आप कर लेते है। हर जगह यदि आध्यात्मिकता का पुट रहता है, तो वह जीवन मे, साधना मे, एक दिन कामयाब होता है। इस प्रकार आप प्रत्येक क्रिया को देखने की चेष्टा करे तो भौतिकता का और आध्यात्मिकता का सम्बध जुड जाएगा। इस प्रकार आप घर का कार्य, परिवार का कार्य, समाज और राष्ट्र का तथा विश्व का कार्य पनपा सकते हैं। सुख, शाति का अनुभव कर सकते हैं।

आज बडे–बडे राष्ट्र शस्त्र बना रहे हैं और एक दूसरे के सामने कमर कसकर खडे हो गए है। परतु उनमे यदि आध्यात्मिकता प्रवेश कर जाए तो सघर्ष ही नहीं हो। परतु आज वे भौतिकता को ही समझ रहे हैं और उनकी ज्ञान–शक्ति, उसमे ही काम कर रही है। जब यह भावना मिट जाएगी तो विश्व मे ज्ञान के साथ उपयोग इस धरातल पर अच्छी तरह पनप सकता है। इस प्रकार भौतिक और आध्यात्मिक तत्व के परस्पर समीक्षण होने पर यथार्थ शांति का साम्राज्य प्राप्त हो सकता है। □□

बेड़ियाँ मोह की

- ❖ कषाय समुद्र मे मोह भवर ।
- ❖ शब्दो को नही, भावो को पकडो ।
- ❖ मोह कीच मे फसा ससारी प्राणी रूप हाथी ।
- ❖ छोटी सी बात महत्तम कार्य साधिका ।
- ❖ विलीनीकरण हो भेद–भाव का ।
- ❖ लोक बन्धन से मोह बन्धन बडा।
- ❖ मोह की बेड़िया तोड़ो।
- ❖ नाशवान शरीर से अविनाशी साधना ।

इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना,
नो हव्वाए नो पराए ।

– आचाराग सूत्र 1/2

बार–बार मोह ग्रस्त होने वाला साधक न इस पार रह जाता है, न उस पार।

अर्थात् वह न इस लोक मे ही शान्ति प्राप्त कर पाता है न परलोक मे ही शान्ति प्राप्त करता है।

जिस प्रकार हाथी जब कीचड मे फस जाता है तो वह उससे निकलने की कितनी ही कोशिश करता है, निकल ही नहीं पाता बल्कि और अधिक फसता जाता है। मोहासक्त व्यक्ति कितना ही प्रयत्न कर ले कितु मोह छोडने के लिए आसक्ति का त्याग करना होगा।

मोह लिप्त आत्मा का समीक्षण कर सशोधन करना होगा।

श्री श्रेयास जिन अन्तर्यामी, आत्मारामी नामी रे ।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुक्ति गम गामी रे ।।

बन्धुओ ! इस ससार मे बहुत बडा उपकार किसका है ? इन तीर्थंकर भगवतो का । तीर्थंकर देव ने अपनी कठोर साधना के बल पर आत्मा का शुद्धिकरण किया। परिपूर्ण सुख और परिपूर्ण शान्ति का उन्होने आत्म प्रदेशो से साक्षात्कार किया और दुनिया के लिए भी उसी मार्ग का उपदेश दिया। वही उपदेश शास्त्र वाणी के माध्यम से, शास्त्रीय वचनो से आज भी भव्य जीवो को उपलब्ध हो रहा है। शास्त्र एक दृष्टि से देखा जाए तो जीवन का अलोक है। अज्ञान–अधकार से भरा हुआ है मनुष्य का जीवन। प्राणी वर्ग की आत्माए यदि शास्त्र का अवलोकन कर ले तो उनका अज्ञान–अधकार दूर हो जाता है। इसलिए शास्त्र को प्रकाश स्तम्भ की उपमा दे तो भी चलता है। शास्त्र भव सागर मे डूबते हुए प्राणी के लिए एक नौका, अवलम्बन स्वरूप हैं, किसी जहाज के टूट जाने पर जहाज के अदर रहने वाले व्यक्ति समुद्र मे डूबने लगते है, और वे वहा से बचना चाहते हैं, कि कोई नौका या पतवार– पाटिया मिल जाए तो हम उसके सहारे समुद्र से पार हो सकते हैं। वैसे ही इस ससार समुद्र मे डूबने वाली आत्माओ के लिए शास्त्रीय ज्ञान नौका के तुल्य, पतवार या पाटिए के तुल्य कहा जा सकता है कि इसके सहारे इस ससार समुद्र को तैरा जा सकता है।

कषाय समुद्र में मोह भंवर

कषाय, मोह, माया रूप ससार एक तरह का समुद्र है। मोह, माया, राग, द्वेष आदि कषायो का अत सत्वहीन व्यक्ति नही कर सकता है। कषाय रूप समुद्र के मोह भवर मे यह नौका पडी हुई है। समुद्र मे या पानी के अन्दर बनने वाला भवर पानी मे गोल–गोल चक्कर खाता है, और उस भवर मे यदि कोई व्यक्ति चला जाए तो उसका निकास नहीं होता। वैसे ही इस कषाय और मोह का भवर है। इसके बीच मे ससारी प्राणी चक्कर काट रहे हैं। उसी परिधि मे घूम रहे है, इसका एक गोल

चक्कर है। कभी वह क्रोध मे आता है, तो कभी अभिमान मे चला जाता है, तो कभी माया और छल मे लग जाता है। वहा से हटा तो लोभ मे चला जाता है। इस प्रकार पुन क्रोध, मान, माया, लोभ का चक्कर चलता रहता है। यह एक भवर है, चक्कर है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने अदर मे देखना है कि मैं इस चक्कर से बाहर हू या अन्दर हू । किसी वस्तु को प्राप्त कर लिया तो फूला नही समाता और उसमे कोई बाधक बन रहा है तो उसको छल, कपट से हटाने की कोशिश करता है। और नही हटा पाता तो खुद शस्त्र से उस पर प्रहार करने की चेष्टा करता है, परतु उस वस्तु को येन-केन प्रकारेण प्राप्त करता है। इन पदार्थों की जो जीवन मे चाह है, लोभ है, वही ससार का भवर है। इस भवर के बीच मे अनन्त काल से यह आत्मा डोल रही है। इसके अन्दर कोई सहारा है, तो वीतराग वाणी का, ज्ञानमय वाणी का ही सहारा है। आप कितने सौभाग्यशाली है कि इतने लम्बे समय के बाद भी श्रवण करने का मौका मिला हुआ है।

शब्दों को नहीं, भावों को पकड़ो

जैसे आधी की तीव्रता मे मनुष्य की पहचान नहीं होती वैसे ही अज्ञान अधकार मे स्वय की पहचान नही हो पाती है। वह अज्ञान अधकार ही इस कषाय-आधी को पैदा करता है। मनुष्य शास्त्र को श्रवण अवष्य कर लेता है। परन्तु श्रवण के बाद अपने मन मे रहने वाले अज्ञान-अधकार को दूर करेगा तभी वह अज्ञान अधकार से दूर हो सकता है। लाइट फिट है, परन्तु उसके फिट होने मात्र से अधकार दूर नही होता। इसी प्रकार शास्त्र लिपिबद्ध पन्नो मे है। पन्ने स्वय अधकार परिपूर्ण हैं। अक्षर खुदे है। वे कैसे प्रकाश कर सकते हैं ? इन पूर अक्षरो को और वाक्यो को रट भी लिए, सारे बुद्धि मे जमा लिए। परन्तु फिर भी प्रकाश का स्वरूप अभिव्यक्त नहीं होगा। क्योकि जैसे बाहर थे, वैसे ही अन्दर जमा लिए। तिजोरी का रूप जैसे बाहर मे दिख रहा है वैसे ही आखे बन्द करके देखेगे तो आपके मस्तिष्क मे वैसा ही रूप आएगा। वैसे ही शास्त्रो को वैसा का वैसा रट लिया।

तब आखे बन्द करके आवृत्ति करेगे तो वैसे ही नजर आयेगे। इतने भाव से उसका अज्ञान अधकार नहीं हटता है। वे शब्द तो पौद्गलिक हैं– मैटर हैं। परन्तु इन शब्दो का रस जब हम पी लेगे और शब्दो के अन्दर मे रहने वाले ज्ञान के प्रकाश को निकाल लेगे, तभी हमारे हृदय मे प्रकाश हो सकेगा। गन्ने के टुकडे अपने पास मे रखे, और देख रहे है। वे टुकडे ऐसे ही आखे बन्द करके भी आप देख सकते हैं। आपने बाहर पडे हुए गन्ने के टुकडो से रस का आस्वादन नहीं किया। पडे हुए से रस नही मिलेगा। परन्तु जब उनको दातो से चबायेगे और रस को अन्दर लेगे, खल भाग को बाहर फेकेगे तभी रस मिलेगा, वैसे ही शास्त्रीय वचनो मे रस भरा पडा है, उन्हे गन्ने के टुकडो की तरह चूसने की कोशिश करना, शास्त्र के शब्दो को जमाना एक बात है और उन पर विचार करना दूसरी बात है। ऐसे विचार से ही मनुष्य का अज्ञान–अधकार दूर होता है। और वह क्षण भर मे अपने जीवन को परिवर्तित कर लेता है। चित्त और सभूति का जीवन सुन रहे हैं। आप ।

मोह कीच में फंसा संसारी प्राणी रूप हाथी

चित्त जी– ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती (सभूति जी) को समझ रहे है। एक चक्रवर्ती हैं तो दूसरे मुनि है। दोनो अपने–अपने स्थान पर हैं। मुनि के जीवन मे प्रकाश है, जबकि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के मन मे अधकार है। उसने इन पदार्थों को दिमाग मे जमा रखा है और सोचता हे कि ये पदार्थ मेरे लिए– जीवन के लिये श्रेयस्कर हैं। उसने इस प्रकार से उल्टा समझ रखा था। प्रश्न के सिलसिले मे ब्रह्मदत्त यह भी कहता है, भाई ! मैं जानता हू कि सरोवर मे हाथी फसा हुआ हे, कीचड बहुत है और वह तीर भी देख रहा हे। किनारा भी उसकी दृष्टि मे आ रहा है और वह हाथी निकलना भी चाहता है। एक पेर उठाता हे ओर उसको पुन वहा रख कर दूसरा उठाने की चेष्टा करता हे तो पुन कीचड मे फस जाता है। जेसे वह कीचड मे फसा हाथी तट को देखता हुआ भी तट को प्राप्त नहीं कर सकता हे, वेसे ही व्यक्ति त्याग

नहीं कर पाता– फसा हुआ कीचड मे । एक पैर उठाता है तो दूसरा फस जाता है। मोह का त्याग करने पर ही आत्मा का कल्याण होगा।

क्या यह स्थिति ब्रह्मदत्त की ही है या आपकी भी है ? अपने–अपने अन्तरघट मे सोचिये। जरा चिन्तन तो कीजिये कि कीचड मे कब तक फसे रहोगे ? और सारी जिन्दगी इसी मे निकल गई तो क्या मिलेगा ? हाथी यदि कीचड ही कीचड मे फसा रहा तो क्या उस हाथी का अन्तिम समय सुधर सकेगा ? सुख और शान्ति मिल सकेगी ? वैसे ही यदि मनुष्य मोह रूपी कीचड मे फसा रहा तो क्या शान्ति मिल पायेगी ? बडी मुश्किल बात है। चादमलजी बोरदिया ने चौथे व्रत का प्रण तो ले लिया। एक पैर तो उठा लिया, परन्तु दूसरा पैर अभी फसा हुआ है कि मेरा बगला है, पौत्र–पौत्री है। तो ये च्याऊम्याऊ के इतने भेद हैं कि बडा से बडा व्यक्ति जन्म–मरण की परम्परा को उच्छित नही कर सकता है, क्योकि जन्म–मरण को बढाने मे मोह ही मूलभूत हेतु है। शास्त्रकार ने कहा है–

इत्थ मोहो पुणो पुणो सन्ना,
सो हव्वाए नो पराए ।

बार–बार मोहासक्ति मे रहने वाला, मोहासक्ति को नही छोडने वाला साधक इस ससार के न इस पार रह पाता है न उस पार अर्थात् उसके उभय जन्म बिगड जाते हैं।

छोटी सी बात महत्तम कार्य साधिका

शास्त्रकार की छोटी सी बात भी यदि जीवन मे उतार ली जाए तो वह भी जीवन का विशिष्ट रूपान्तर करने वाली है। छोटी सी चिन्गारी भी बडा काम कर जाती है। छोटा मनुष्य भी बडे–बडे काम कर जाता है। कभी बडे लोग हस पडते है छोटे आदमी को देखकर । एक रूपक आया है कि एक पद्म वन मे बहुतेरे जन्तु रहते हैं।

चीते, शेर, हाथी वगैरह रहते थे। उसमे एक हाथी भी रहता था,

वह सात सौ हथनियो के साथ मस्ती से घूमता था। उसी वन मे एक चूहा भी रहता था। वह बिल से बाहर निकला और उसने जाकर के महाकाय हाथी को नमस्कार किया और कहने लगा– स्वामिन् ! मेरा प्रणाम स्वीकार हो। मै भी आपका अनुचर हू। आपकी सेवा मे रहकर आपकी सेवा करना चाहता हू। हाथी की दृष्टि उस चूहे की तरफ गई। चूहे का छोटा सा शरीर था। उसको देखका हाथी हसा कि यह मेरी क्या सेवा करेगा ? उस चूहे ने कहा स्वामिन् ! मेरा ख्याल रखना। छोटा हू तो क्या हुआ ? छोटा देखकर मेरी बेकद्री न करना। सेवक की सेवा लेना। हाथी हसा और दूसरे भी हसे कि यह हमारी सेवा करने मे कैसे कामयाब होगा ? सयोग ऐसा बना कि हाथी को पकडने वाले बडे व्यक्ति पहुचे, और उन्होने ऐसा जाल बिछाया कि हाथी उसमे फस गया। हाथी उस जाल को तोड नही पा रहा था। जाल मजबूत था। अब हाथी इधर–उधर देखता है कि मेरा बन्धन कौन तोडेगा ? कोई नजर नही आया। इतने मे चूहा दौडता हुआ आ गया। और कहने लगा– स्वामी ! आज्ञा हो तो सेवा करू। परतु फिर भी हाथी हसने लगा कि मैं तो बन्धन मे हू तू क्या इसे तोड सकता है ? चूहे ने कहा– मेरा पुरुषार्थ देखिए तो सही। हाथी ने सोचा कि यह सेवा तो नही कर सकता है। खैर ! इसको कह तो दू कि सेवा कर। हाथी ने कहा कि सेवा करो। तब वह चूहा दस बीस और चूहो को ले आया, और बन्धन को काट डाला। हाथी को आजाद कर दिया। छोटा जन्तु भी समय पर बहुत कुछ काम कर सकता है। एक तृण भी मनुष्य के काम आ सकता है। मनुष्य कभी–कभी सोचता है कि यह तो छोटा हे – यह क्या कर सकता है ?

विलीनीकरण हो भेदभाव का

आज तो छोटे बडे का बडा भेद चल रहा है। धनवान सोचते हैं कि हमारी पार्टी अलग है और गरीब को कहते है कि ये क्या कर सकते हैं ? अरे ! किसको छोटा और बडा समझते हो ? छोटा जितना आत्म योग देकर काम कर सकता है उतना बडा व्यक्ति नहीं कर सकता है। आप प्रत्येक क्षेत्र मे देखिए। आज आपके मकान बनाने

वाले कौन हैं ? छोटे आदमी ही बना रहे हैं। जहा आपको कुली की आवश्यकता है तो वे छोटे आदमी ही आयेगे। छोटे आदमी कहलाने वाले ही काम करेगे। परतु मनुष्य की भावना मे छोटे– आदमी की क्या कद्र है ? मै तो समुच्चय रूप मे कह रहा हू। आज सारे ससार की यही बात है। जहा आप भेदभाव की दीवार लगाते हैं, वहा मोह का बन्धन कैसे टूटेगा ? समीक्षण धारा कैसे प्रवाहित होगी ?

लोह बन्धन से भी मोह बन्धन बड़ा

बडे से बडे बन्धन तोडे जा सकते हैं परन्तु मोह का बन्धन तोडना बडा कठिन है। मेवाड के दरबार के पास एक पहलवान पहुचा और कहने लगा– हुजूर ! मैं बहुत से देशो मे भ्रमण करके आया हू। मुझे सब देशो से स्वर्ण पदक आदि मिले है। यदि मेवाड देश का भी पहलवान हो तो मै कुश्ती लडना चाहता हू और वह हरा देगा तो सब कुछ भेट करके उसका चेला बन जाऊगा। और वह हार जाए तो मेवाड देश से मुझे प्रमाण पत्र मिलना चाहिए। महाराणा ने सोचा कि इस गरीब मेवाड देश मे कहा से पहलवान मिल सकता है ? परन्तु ऐसा कहता हू तो मेरे देश की पोजीशन– शान गिरेगी। अत कहा कि आप अभी विश्राम गृह मे जाइये। समय पर आपको याद कर लिया जायेगा। वह चला गया । और फिर महाराणा इस विषय मे अपने राज्य कर्मचारियो से परामर्श करने लगे कि मेवाड देश की इज्जत कैसे रहेगी ? इस सभा मे जेल का आफीसर भी था। वह देरी से आया था, और जब वापिस जेल मे गया तो दूसरे लोगो ने पूछ लिया कि आप देरी से कैसे आये ? तो जेलर ने कहा कि आज मेवाड देश पर आपत्ति आ गई है। एक पहलवान बाहर का आया हुआ है, उससे कुश्ती लडना है। तो एक बडा कैदी जिसके हाथो मे हथकडिया और पैरो मे बेडिया थी वह अन्दर से बोल उठा कि जो वास्तव मे मनुष्य की कद्र करना नहीं जानता हो, मनुष्य का मूल्याकन नही करता हो और बाहरी पहनावे से बडा समझता हो तो उसके सामने आपत्ति नही आये तो क्या आये ? यह सुनकर जेलर ने कहा

कि अरे ! तू सजा भुगत रहा है फिर भी ऐसी बाते कर रहा है। उसने कहा – हुजूर ! मैं सही बात कह रहा हू। जेलर ने कहा – क्या तुम्हारी नजर मे है कोई ? उसने कहा– साहब ! क्या कमी है 'बहुरत्ना वसुन्धरा' इस वसुन्धरा मे, पृथ्वी मे बहुत रत्न भरे पडे है। यदि दरबार की आज्ञा हो तो मै कुश्ती लड सकता हू। मैं चैलेन्ज दे सकता हू। जेलर खुश होता हुआ दरबार के पास गया ओर निवेदन किया– अन्नदाता ! एक कैदी लडने के लिये तैयार है, तो दरबार ने कहा– कि कहीं जेल से छूटने के लिये तो तैयारी नहीं कर रहा है ? और वह भाग जायेगा तो किसे पकडोगे ? जेलर ने कहा हुजूर आपके यहा सैन्य दल है, चारो तरफ सैनिको का पहरा रख दिया जाए। और जेल से उसे सिपाही लोग हथकडिया–बेडिया मे जकडा हुआ लायेगे। और अखाडे मे चारो तरफ सिपाही तैनात रहेगे, फिर हुजूर ! भाग कर कहा जा सकता है ? हथकडिया–बेडिया खोलने के बाद उस पहलवान से कुश्ती लडेगा। जेलर वहा से रवाना होकर जेल मे गया, और उस कैदी से कहा कि एक शर्त पर तुम पहलवान से लड सकोगे कि उस पहलवान को जीत जाओगे तो सजा से मुक्त कर दिये जाओगे और हार गये तो फासी की सजा मिलेगी। ऑफीसर ने यह शर्त उसके सामने रखी तो कैदी ने कहा– साहब ! मुझे मजूर है। पहलवान को बुलाया गया। दरबार की तरफ से चारो तरफ सैनिको को तैनात कर दिया गया और सावधानी पूरी बरती गई। इधर वह कैदी भी सिपाहियो के पहरे मे आ गया। फिर उसके हाथ पैरो की बेडिया तुडवाने के लिये कारीगर बुलवाने की आज्ञा दी गई। परन्तु कैदी ने कहा– आप यह क्या कर रहे हो ? तो कहा– कारीगर को बुला रहे है। क्योकि बेडी तो छैनी–हथोडे से ही काटी जाएगी। लोहा लोहे से ही काटा जाता है। तब कैदी ने कहा– हुजूर ! आपकी आज्ञा तो है ना कि मेरे हाथ–पैरो मे बेडिया नहीं रहे ? और स्वीकारात्मक प्रत्युत्तर मिला तो उसने कहा कि आप कारीगर को व्यर्थ मे कष्ट मत दीजिये। मैं ही इन्हे ठीक कर लेता हू। तो उसने ऐसे ही हाथो को मरोड कर जैसे सूत का धागा टूटता है, वैसे ही बेडिया तोड डाली। यह देखकर सब आश्चर्य करने लगे कि इतनी

ताकत है तुम्हारे अन्दर ? जो हथकडिया–बेडिया छैनी से कटती जाती है उन्हे तुमने बगैर छैनी के यो ही तोड दी। तो इतने दिन जेल मे कैसे बैठे रहे ? कभी भी तोड कर भाग सकते थे। वह कैदी कहने लगा– कि हुजूर यह तो लोहे की बेडिया हैं, परन्तु मेरे मन की बेडिया इनसे अधिक जकडी हुई थी। मेरे पीछे चुन्नू–मुन्नू है, यदि मै बेडियो को तोडकर चला जाऊ तो उनकी क्या दशा होगी। क्योकि आप मेरे कारण उनको दण्डित करते । मेरा मोह उन बाल–बच्चो मे फसा हुआ था। यही मोह की जबर्दस्त बेडी है।

मोह की बेड़ियां तोड़ो

भाईयो ! यह तो एक प्रसग है परतु मुद्दे की बात यह है कि बाहर का बन्धन तोडना तो फिर भी आसान है परन्तु मोह का बन्धन तोडना मुश्किल है। छोटे से तत्व से इसको तोडना है। ज्ञान की लाइट, छोटी सी चिगारी लगा दे, वह छोटी नही बहुत महान् है। एक बडे घास के ढेर को एक छोटी सी चिगारी खत्म कर सकती है। आप ज्ञान का प्रकाश आत्मा मे से निकाले और मोह कर्म की बेडियो को तोड डाले। मोह तोड दिया तो सारे प्रयास आपके सफल हो जायेगे। मन जब वीरता धारण कर लेता है तो वह सबकुछ कर सकता है। आपका जिन्दगी भर का मोह छोडकर साधु बन जाना तो मुश्किल है। चौबीस घण्टे का मोह छोडिये, ऐसा कहते है तो भी छोडना मुश्किल हो जाता है। ये जीवन ऐसे ही जा रहा है। कपूर की टिकिया की तरह। यदि सुगन्ध लेना है तो ले लो, और उड गया तो हाथ मे कुछ भी नही आने वाला है। कपूर की टिकिया को तिजोरी मे बन्द करके रख लो, तो क्या वह टिक सकेगा ? नही, वैसे ही यह शरीर भी टिक नहीं सकता । तथापि कितना मोह है इस शरीर पर कि एक दया मे रहने जाते हो, चौबीस घण्टे तो सोचते हो कि कब दिन उगे और घर जाये ? कई तो रात मे भी चले जाते हैं। ये बेडिया पडी हुई हैं इस मोह की जिसे चौबीस घण्टे भी नही छोड सकते हैं।

नाशवान शरीर से अविनाशी साधना

कितना ही इस शरीर का यत्न कीजिये। खिलाइये। पिलाइये। परतु यह तो निरतर धक्का देता हुआ चला जा रहा है। समय रहते जो लाभ ले लेता है वह ज्ञानी है। इस शरीर से लाभ उठा लिया तो उठा लिया। समीक्षण धारा मे जो हाथ धो लेता है वह धो लेता है। जितना मोह का त्याग करेगे उतने ही मोक्ष के नजदीक जायेगे। जितने कदम बढेगे उतना ही शरीर को नजदीक लेगे। यह धर्म अन्तराय कर्म को तोडने वाला है। मुनिराज धर्म–ध्यान के लिए सदैव कहते हैं। मोह को छोडो, आत्म साधना करो। कोई पता नही है कि कौन पहले जाएगा। कौन बाद मे ? जहा बीकानेर के रामपुरियाजी के इकलौते पुत्र की घटना है। पुत्र की बाईस वर्ष की अवस्था थी और दो साल हुए शादी किए हुए को। उसके मुह मे दात पर दात आ गया जिससे करोडपति के लडके की सुन्दरता मे कमी आ गई। फैमिली डॉक्टर के पास ले गये। उसने दात निकालने के लिए, स्थान सुन्नता के लिए इन्जेक्शन लगाया। वह इन्जेक्शन ऐसा लगा कि सदा के लिए लडका चला गया। जीवन का कोई अता पता नही हे, अत जितनी अधिक आत्म साधना कर लो, उतना ही अच्छा है। शरीर तो एक दिन जाने वाला है, इसमे से जितना माल हाथ से निकालना चाहो उतना ही निकाल सकते हो। जो भी भव्य आत्मा शरीर और आत्मा का भेद विज्ञान कर शरीर द्वारा आत्म जागरण के लिये पुरुषार्थशील बनेगे वे तो मोह की अनन्त–अनन्त जन्मो से जकडी बेडियो को तोडकर एक दिन परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर सकेगे। □□

भाव अध्यात्म निज गुण साधे

अप्पाचेव दमेयव्वो, अप्पाहु खलु दुद्दमो ।
अप्पादंतो सुही होई, अस्सि लोए परत्थए ।।

— उत्तराध्ययन सूत्र 1/15

अपने आपको दमित/नियत्रित/सशोधित करना चाहिए। अपने आपका सशोधन करना वस्तुत बहुत कठिन है। अपने आप पर नियत्रण रखने वाला साधक ही इस लोक और परलोक मे सुखी होता है।

आत्मा का सशोधन आवश्यक है। यह सशोधन सही रूप मे कब हो जाएगा जब यह आत्मा अपने आपका समीक्षण करने लगेगी।

नाम, स्थापना, द्रव्य का परिकर जो भाव आत्मिक शक्ति पर है। उनका समीक्षण करना होगा। बिना भाव के नानादि जय सही रूप मे कार्य साधक नही हो सकते।

श्री श्रेयास जिन अन्तर्यामी, आतम रामी नामी रे ।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुगति गति गामी रे ।।
सयल ससारी इन्द्रिय रामी, मुनि गण आतम रामी रे ।
मुख्य पणे जे आतम रामी, ते केवल निष्कामी रे ।।
निज स्वरूप जे किरिया साधे, तेहने अध्यातम कहिये रे ।
जे किरिया करि चउगति साधे, तेहने न अध्यातम लहिये रे ।।
नाम अध्यातम, ठवण अध्यातम, द्रव्य अध्यातम छडोरे ।
भाव अध्यातम निज गुण साधे, तो तेहणु रढ मडोरे ।।

बधुओ ! अनत–अनत उपकार के केन्द्र तीर्थंकर भगवान् जिन्होने भव्य जीवो पर अनिर्वचनीय उपकार किया । जिस वस्तु को उन्होने बहुत बडा महत्वपूर्ण स्थान दिया उसी वस्तु का उपदेश देकर जनता के लिए कल्याण मार्ग प्रशस्त किया। वे स्वय आत्म साधना के लिए निकले। और दृढ सकल्प के साथ चल पडे आत्म साधना करने, कभी वे पीछे नही हटे। शरीर की परवाह नहीं की। मान और अपमान को पीठ के पीछे रखा। उसी दृढ लक्ष्य आत्म शुद्धि को सामने रख कर चले, घोरतम जगल मे भी रुके और अनार्य क्षेत्र के घोर परिषह सहे, दैविक उपसर्ग सहे, परिपूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति प्राप्त की, तत्पश्चात् आध्यात्मिक उपदेश दुनिया को दिया। मुख्य रूप से यह बात कही कि साधारण जन प्राय इन्द्रियो मे ही रमण करते है। परन्तु मुनिगण ही ऐसे हैं, जो अध्यात्म की ही मुख्यता को लेकर चलते है। ससार मे रहते हुए भी व्यक्ति यदि आध्यात्मिक लक्ष्य बनाकर चले और कुछ देश से, हिस्से से, कुछ हद तक आगे बढे तो उसका जीवन भी एक न एक दिन इस जन्म मे नहीं तो अगले जन्म मे अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ सकेगा। श्रावक व्रत की आराधना करने वाला यदि श्रावक व्रतो की उत्कृष्ट आराधना कर ले तो उसके लिए एक तरह से मोक्ष रिजर्व हो जाता है। वहा उत्कृष्ट पन्द्रह भवो से अधिक नहीं लगते हैं। यदि उसके बीच मे साधु जीवन की आराधना कर ले तो पहले भी मोक्ष मे जा सकता है।

अध्यात्म विवेचना नामादि चतुष्प्रकार से

मुक्ति प्रदायक अध्यात्म साधना क्या है ? उसको ठीक तरह से समझने की आवश्यकता है। अध्यात्म शब्द है ? शब्द अध्यात्म नही है परन्तु इसके पीछे जो रहा हुआ अर्थ है, वह आध्यात्मिक जीवन का सूचक है। कवि आनन्दघनजी ने दुनिया को स्पष्ट ज्ञान की दृष्टि से श्रेयास भगवान् की प्रार्थना करते हुए स्पष्ट बात कह दी। और नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव भेद से अध्यात्म को विभक्त किया जैसी कि कविता है –

नाम अध्यात्म ठवण अध्यात्म, द्रव्य अध्यात्म छंडो रे ।
भाव अध्यात्म निज गुण साधे, तो तेहशु रढ़ मडो रे ।।

भाषा उन्नीसवी सदी की है। उसमे शास्त्रीय भावो को भरा गया है।

तत्व परीक्षक नामादि चतुष्टय

तीर्थंकरो ने वस्तु की पहचान के लिए चार बाते बताई है। स्वर्ण सही है या गलत है उसका ज्ञान करने वाला व्यक्ति क्या करता है – कष, ताप और छेद। परीक्षक पहले कसौटी पर कसता है। कसने पर कसौटी पर यदि सही उतर गया तो कहता है कि स्वर्ण असली है। यदि कसौटी पर सही नही उतरा, कुछ कमी रह गयी ताप देकर उसको देखता है और ताप मे भी यदि पूरी परीक्षा नहीं हुई तो छेदता है, काट कर देखता है। यह आपके व्यवहार मे आने वाले सोने की परीक्षा है। वैसे ही भगवान् ने आत्मा को समझाने के लिए चार कसौटिया बताई हैं। प्रत्येक तत्व को समझाने के लिये मुख्य रूप से इन चार कसौटियो को काम मे लिया जाता है। वे कौन सी चार बाते हैं ? उनको आप सब को ध्यान मे रखना है। एक नाम, दूसरा स्थापना, तीसरा द्रव्य और चौथा भाव है। उदाहरण के तौर पर आप समझ लीजिए कि किसी मनुष्य की पहिचान करनी है। मनुष्य की पहचान करने के लिए मनुष्य नाम के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य नाम

जिसका रखा गया उसकी आकृति भी मनुष्य की होनी चाहिए। यह स्थापना हो गई। द्रव्य पिण्ड– इसमे हाड, मास, लोही होने चाहिए। और भाव की दृष्टि से मनुष्य जीवन का भाव– मनुष्यपना, इन्सानियत, मनुष्यता होनी चाहिए। ये चार बाते मनुष्य मे हैं तो वह खरा मनुष्य है। किसी लकडी का नाम मनुष्य दे दिया, उसमे पुरुष की आकृति भी ला सकते है किन्तु भावात्म पुरुष की स्थिति कभी काष्ठ मे नही बन सकती। वैसे ही भगवान का स्वरूप है, भगवान् का परिपूर्ण आध्यात्मिक रूप है।

भगवान् महावीर और नामादि चतुष्टय

भगवान् के स्वरूप को जानने के भी चार तरीके हैं। जैसे महावीर–महावीर नाम लेते ही भ महावीर याद आते हैं। यह नाम है परन्तु जेठमल जी के लडके का नाम भी महावीर है, तो महावीर शब्द से क्या भ महावीर को समझ लेगे ? नही । महावीर के नाम के साथ महावीर की आकृति होनी चाहिए। नाम के महावीर हैं परन्तु आकृति महावीर की नहीं– महावीर का शरीर वैसा नही है तो महावीर केवल सज्ञा मात्र है। जैसे यह अमुक का लडका है बस । इतनी ही सज्ञा होती है परन्तु महावीर के नाम के साथ आकृति आनी चाहिए। महावीर के मोक्ष मे पधारने के बाद उनके शरीर की आकृति तो थी ना ? परन्तु उस आकृति को क्या आप महावीर कहेगे ? वह भी महावीर नहीं हुआ। क्योकि महावीर रहे नहीं। महावीर तो मोक्ष मे हैं। उस आकृति को महावीर कहे तो वह तो जलाया गया। देवो ने चन्दन से दाह सस्कार किया। वह स्थापना कहलाती है। यदि उससे भी भ महावीर की पूर्ति होती तो देवता उनको सुरक्षित रख लेते। आज जो वैज्ञानिक लोग हैं वे किसी मनुष्य के कलेवर को आकृति को सुरक्षित रखना चाहे तो उसमे मसाला भर कर रख लेते हैं । म्यूजियम मे आपको देखने को मिल भी जाता है। जहा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जो मसाला भरा जाएगा, उसको सुखाकर भरा जाएगा। ऐसा मसाला होता है कि जिसमे समूर्च्छिम जीव पैदा नहीं होते हैं और उसमे सडाध नहीं होती

है। आपने देखा होगा कि किसी का ऑपरेशन हुआ और बडी गठान निकाली उसे दिखाने के लिए उसको केमिकल्स मे रखते है। परन्तु यदि वही गाठ बाहर पडी रह जाती जो उसमे दुर्गंध पैदा हो जाती। देवता तो वैज्ञानिको से अधिक कलाकार हैं। वे विशिष्ट पुद्गल डाल देते। इस दृष्टि से यदि देवता लोग चाहते तो भगवान् के शरीर की आकृति को वैसी की वैसी ही रख लेते। नाम तो महावीर था ही, और आकृति, स्थापना भी हो जाती। परन्तु शरीर को जला दिया। क्योकि इससे भ महावीर की पूर्ति नही होती। तीसरी कसौटी है द्रव्य। हाड, मास और अन्दर के तत्व है। उनके मास को तो कदाचित् सुखा देते परन्तु हड्डियो का ढाचा तो रख लेते ? यदि वह भी रह जाता तो तीन बातो की पूर्ति हो जाती कि नाम, स्थापना और द्रव्य। परन्तु ये तीन चीज नही रखी। क्योकि इसमे भ महावीर की पूर्ति नही होती। अत तीनो चीजो को जला दिया। भाव रूप से शरीर मे भ महावीर की यदि आत्मा होती तो सभी नमन करते अत भाव ही मुख्य हैं, नामादि तो उसके पूरक हैं। बिना भाव के नामादि कोई काम के नही है।

भाव के पूरक नामादित्रय

किसी बच्चे का नाम अध्यात्म रख दिया हो तो आप उसे अध्यात्म मत समझना। किसी पाटी पर या पुस्तक पर लिख दिया अध्यात्म, तो उसको भी आध्यात्मिक नही समझना और उसको भी छोड देना। द्रव्य अध्यात्म– जो आध्यात्मिक जीवन का ज्ञान रखने वाले थे परन्तु उनकी आत्मा चली गई अब उनका शरीर पडा हुआ है वह द्रव्य अध्यात्म है। अथवा भविष्य मे कोई आध्यात्मिक ज्ञान सिखाने वाले है, तो भी द्रव्य अध्यात्म है। ये तीन हो गये। परन्तु आनन्दघनजी कहते है – इन तीनो को छोडो। तुम्हे आध्यात्मिक साधना मे काम देने वाले नही हैं। यदि भाव अध्यात्म सहित ये तीनो बाते है– आध्यात्मिक नाम हो, आकृति भी हो और आध्यात्मिक जीवन भी हो, भावना भी हो, तभी वह अध्यात्म दृष्टि से अध्यात्म कहलाता है। बन्धुओ यह चिन्तन का

विषय है। इसको ध्यान मे लोगे, कसौटी हाथ मे रखोगे तो आप सबको पहचान सकते हो। जड, चेतन को पहचानने के लिए कसौटी है। सोने, चादी की कसौटी तो याद रखते हो, परन्तु यह याद रखोगे या नही ? कभी पूछोगे तव पता चलेगा। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारो मे से भाव नही है– तीन हैं तो वे काम नही आ सकते है।

नामादि सम्पन्न चित्त अनगार

अभी आप शास्त्र श्रवण कर रहे थे। जहा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को मुनिराज समझा रहे हैं। एक तरफ चक्रवर्ती जिसके पास छ खण्ड का साम्राज्य है ओर आनन्द लूट रहा है। इधर चित्त मुनिराज हैं जो कि आध्यात्मिक साधना करने वाले हें। उनमे नामादि चारो बाते पाई जाती हैं। चित्त मुनिराज को आध्यात्मिक मुनि कह सकते हैं। उनकी आकृति मुनि की है, मुहपत्ती, ओघा है, और द्रव्य मे उनका शरीर पिण्ड है। भाव मे वे परिपूर्ण अध्यात्म की साधना करने वाले हैं। नामादि चारो से युक्त है। उनसे ओत–प्रोत होकर ब्रह्मदत्त को समझा रहे हैं अरे बन्धु ! क्या कर रहे हो ? कई भवो मे हम साथ रहे हैं। इस भव मे क्यो पीछे रहते हो ? अब भी आ जाओ ! चकवर्ती के पद पर रहते हुए कभी भी मोक्ष होने वाला नहीं हे। छ खण्ड का राज्य तुम को तिराने वाला नही है। उनके पास कितनी बडी ऋद्धि होगी, कल्पना करो कि जब इतनी बडी ऋद्धि भी तिराने वाली नहीं है तो आज के मनुष्य के पास कितनी–सी ऋद्धि है ? नाम मात्र की है। परन्तु आज का व्यक्ति एक कौडी की ऋद्धि भी नही छोड सकता है। प्रभु ने भौतिक ऋद्धि को महत्व न देकर आत्मा को महत्त्व दिया है। भगवान् महावीर ने कहा है कि तुम इस आत्मा का दमन करो। कहा है–

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पाहु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दतो सुही होई, अस्सि लोए परत्थए ।।

"अपनी आत्मा का दमन, सशोधन करना ही दुर्दमनीय है। जो कोई आत्मा अपने आप का दमन करती है वह इस भव पर भव दोनो भवो मे सुखी हो जाती है। किन्तु आज का मानव आत्मा की ओर से उपेक्षित होकर भौतिक पदार्थों को पाने की लालसा मे दौड रहा है। अध्यात्म को भूल भौतिकता मे दौड लगा रहा है। ऐसा भौतिकवादी कभी भी शाति प्राप्त नही कर सकता है।

लालसा का परिणाम

एक लालसाराम नामका सेठ था। पूर्व जन्म के पुण्योदय से बहुत पूजी पाई। परन्तु सतो के पास कभी नही जाता। कोई धर्म करता तो उसके भी अन्तराय डालता रहता था। इससे उसका अन्तराय कर्म इतना बढ गया कि यहा से मरकर वह ब्राह्मण कुल मे जन्मा। और वहा भी कर्कशा स्त्री मिली। पति–पत्नी प्रतिदिन लडते रहते थे। एक दिन उसकी पत्नी बोली– कि मैंने इस घर मे आने के बाद न तो राता पहिना और न ताता खाया। मै गर्भवती हू बच्चा आने वाला है। पहले चार पैर थे, और अब छ पैर हो जायेगे । यदि यही हाल रहा तो क्या करेगे। क्या तो तुम खाओगे ओर क्या बच्चो को खिलाओगे ? ऐसी स्थिति थी तो क्यो शादी की ? मुझे यहा क्यो लाए ? ब्राह्मण ने कहा कि मेरी बुद्धि नही चलती है । मै कमा नहीं सकता हू । तब उसकी स्त्री कहने लगी कि पूर्व जन्म मे पाप किया होगा तो मेरे जैसी स्त्री मिली। लालसाराम ने कहा कि अब तू ही बता कि कहा जाकर कमाई करू ? स्त्री ने कहा– कि स्वर्णिम भूमि है वहा जाओ। वहा कमाई होगी। लालसाराम गया। वहा जाकर कमाई करने लगा। मजदूरी करता तो कुछ मिलता। परन्तु विशेष कमाई नही होती। अन्तराय कर्म हो तो एडी से चोटी तक पसीना बहा दो फिर भी कुछ नही मिलता, किन्तु स्त्री का डडा सामने था। कम से कम जापे जितना बचाकर ले जाना था। अत लालसाराम जी ने पेट मे कम खाया। इस प्रकार बचाते–बचाते हजार मोहरे इकट्ठी कर ली। उन्हे लेकर रवाना हुए। रास्ते मे एक इन्द्रजालिया मिल गया। उसने उसको प्रसन्न मुद्रा मे

आते देखा तो समझ गया कि इसके पास कुछ है। बोला– ब्राह्मण देवता । क्या है तुम्हारे पास ? लालसाराम जी बोले कि हजार मोहरे कमा कर लाया हू । इन्द्रजालिया बोला – ब्राह्मण देवता ! मुझसे कोई धोखा होने वाला नहीं है परन्तु आगे लूटेरे हैं अत आप यहीं रूक जाओ। ब्राह्मण देवता वही रूक गये। इन्द्रजालिया ने उसके सोने के लिए– चादर बिछाकर खुद एक दिशा मे जाकर एक षोडसी नव योवना स्त्री एव एक वृद्धा तथा एक वृद्ध का रूप बनाकर उस ब्राह्मण के पास पहुचा। ब्राह्मण ने उन तीनो को देखा और पूछा आप कहा जा रहे हें ? कुआरी कन्या साथ थी। उसे देखकर ब्राह्मण देवता आसक्त हो गये। षोडसी ने कहा कि यह मेरी मा हे और ये मेरे बाप हैं। मेरी शादी करने के लिए जा रहे हैं लालसाराम जी बोले– कहा ढूढोगे ? मेरे साथ ही शादी कर दो। मै हजार मोहरे कमाकर लाया हू। लो ये ले लो, हजार मोहरे देकर ब्राह्मण देवता उस लडकी के साथ रवाना हुए। यह नहीं सोचा कि पहली पत्नी तो सभल ही नहीं रही है, दूसरी को कैसे सभालूगा ? आगे बढे तो वह स्त्री भी गायब हो गई। अब लालसाराम जी खाली हाथ है। एक गाव के नजदीक वृक्ष की छाया मे सो गये। स्वप्न आया। उसके सामने मायावी देवी आई। कहने लगी– कि फिक्र मत कर। तेरे घर मे सोने के चरू गडे हुए हैं, परन्तु पहले मत खोदना। पहले परिवार और समाज वालो को जिमाना। इतने ही मे कुत्ता भोंक गया। उसका स्वप्न टूट गया। अब वह घर गया। तो उसकी स्त्री खुश हुई कि कुछ लाए है। वह नम्र बन गई, सोचा कि कुछ न कुछ गहरी सम्पत्ति लाए हैं। उसने पूछा कि बात क्या हे ? तो लालसाराम जी बोले– कि पडौसी से कुछ सामान उधार लाओ ओर पहले परिवार, समाज वालो को जिमाओ ओर फिर मैं कहूगा। उसकी पत्नी जैसे तैसे उधार सामान लाई और सबको भोजन कराया फिर पूछा कि बताओ, तो वह दीवार खोदने लगा। एक तरफ की दीवार गिरा दी, तब पडौसी कहने लगे कि क्या कर रहे हो ? उसने कहा कि– बोलो मत। मै धन निकाल रहा हू। उन्होने पूछा कि क्या बात हे ? इसने कहा कि स्वप्न आया है मुझे, यहा धन मिलेगा। लोगो ने कहा कि मूर्ख ! ऐसा काम अब मत कर। जिसके पूर्व जन्म मे अन्तराय कर्म

रक्षा बन्धन : एक विश्लेषण

- ❖ अर्थ का गम्भीर अर्थ
- ❖ समीक्षण करो अन्तरग का
- ❖ दमन नहीं सशोधन करो
- ❖ रक्षा बन्धन आत्मा की रक्षा हो
- ❖ पौराणिक आख्यान
- ❖ जैन परम्परा की कथा
- ❖ ऐतिहासिक घटनाए
- ❖ रक्षा बन्धन और आज का वातावरण

"सव्वओ परमत्तस्स भय
सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्यि भयं।"

— आचाराग सूत्र 1/3/4

प्रमत्त को सब ओर से भय रहता है।
अप्रमत्त को किसी भी ओर से भय नही रहता है

अगर आत्मा की रक्षा करनी हे, उसे निर्भय बनाना हे, तो अप्रमत्त भाव जागृत करना होगा। जब तक प्रमत्त स्थिति रहेगी, विषय कषाय आत्मा मे भरा रहेगा, तब तक आत्मा की रक्षा नहीं हो सकती। आत्मा की रक्षा करने के लिए अप्रमत्तताचरण अपनाना होगा। विषय कषायो को शमित्त करना होगा। आत्मा का इनसे सशोधीकरण करना होगा। तभी आत्मा की वास्तविक रक्षा होगी।

श्री श्रेयास जिन अन्तर्यामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम मत पूरण पामी सहज मुक्ति गति गामी रे।।
नाम अध्यातम ठवणा अध्यातम द्रव्य अध्यातम छडो रे।
भाव अध्यातम निज गुण साधे तो तेहशु रढ मडो रे।।
श्री श्रेयास

बन्धुओ ! उन परम पवित्र अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाश पुज स्वरूप तीर्थकरो ने जो अमूल्य उपदेश दिया और उस अमूल्य उपदेश के अन्दर ऐसा कुछ नवनीत दिया कि जिस नवनीत को दुनिया के अन्य व्यक्ति नही दे सके चाहे वे भौतिक विज्ञान के नेता हो साहित्य की दृष्टि से उच्च कोटि के साहित्यकार हो व्यापार की दृष्टि से बडे-बडे व्यापारी, मिल मालिक, अधिकारी या राजनैतिक तत्र के नेता लोग हो। इन सब के भिन्न विषय है। और सभी विषयो का हम औसत चिन्तन करे, तो सभी एक अर्थ मे समाविष्ट हो जाते है— अर्थ के इर्द-गिर्द। अर्थ के चारो ओर दुनिया घूम रही है। अर्थ का मतलब सिर्फ धन है। धन तो है परन्तु उपलक्षण से स्वय की जिन द्रव्यो से, सुख-सुविधाओ की दृष्टि से जिन-जिन भौतिक उपलब्धियो की आवश्यकता है उन्ही वस्तुओ के पीछे जीवन की समर्पणा और उन्हीं विषयो को प्रमुखता देना यह भी इस अर्थ के अन्तर्गत है। यह जो अर्थ का व्यापक अर्थ है, इसका दुनिया मे रहने वाले व्यक्ति सहज रूप मे ज्ञान कर सकते है।

अर्थ का गम्भीर अर्थ

जो इन अर्थों का व्यापक अर्थ करने वाला, जो सब अर्थों को समझने वाला, सभी आन्तरिक सौदर्य और वैभव अवस्था का आनन्द लेने वाला, महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, उस महत्त्वपूर्ण तत्त्व को आज दुनिया विस्मृत कर रही है। उसको उभारने के लिए तीर्थकर देवो ने स्वय परिपूर्णता पाकर मानव को इस आध्यात्मिक तत्त्व का उपदेश किया। तीर्थकर देव बडे दयालू थे। वे अपने ज्ञान मे भली भाति जानते थे कि कुछ के लिए सुख का उपदेश या सुख की उपलब्धि कराने वाले बहुत

मिल जायेगे। परतु जीवन के स्थायी तत्व को प्रकट कराने वाले ओर स्थायी शाति का मार्ग बतलाने वाले विश्व मे कम मिलेगे। मूलभूत उपदेश का कथन विविध रूप मे किया जाता है, क्योकि शुद्ध घृत मनुष्य खा नहीं सकता है। अत चतुर व्यक्ति अपने शरीर की पुष्टि के लिए घी और शक्कर को आवश्यक समझकर और विभिन्न तरीके से अन्य तत्वो मे मिलाकर खा लेते है। वैसे ही आध्यात्मिक जीवन की पुष्टि, आत्मशक्ति के विकास के लिए प्रभु महावीर ने और अन्य तीर्थंकरो ने जो उपदेश दिया है, उस उपदेश रूप मिठाई और घृत को विविध रूप से ज्ञानी जन श्रोतागणो के समक्ष रखते हैं। शाश्वत शाति की विवेचना कल मैं आपके समक्ष नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव माध्यम से कर गया था। शायद आप लोगो की स्मृति मे होगा।

समीक्षण करो : अन्तरंग का

जीवन का चरम लक्ष्य पाने के लिये अन्तरग के जीवन का समीक्षण करना होगा। अन्तरग मे जहा ज्ञान की पवित्रता और निर्मलता रही हुई है, वहीं पर अज्ञान की अशुद्धि भी रही हुई है। इसी अन्तरग मे जहा ज्ञान का कल्पतरु है, वही अहकार का विषैला वृक्ष भी है, इस प्रकार के द्वन्द्वात्मक तत्व एक ही स्थल पर समाए हुए हैं। साधक को अपने अन्तरग का विचक्षण प्रज्ञा से समीक्षण करना होगा, सम्यक् प्रकार से वीक्षण करने के बाद ही सशोधन किया जा सकता है। जिस प्रकार ककर भरे धान्य से सशोधन द्वारा ककरो से धान्य अलग किया जा सकता है। वैसे ही आत्मा ओर कर्म की एकाकारता का समीक्षण कर सत्पुरुषार्थ के द्वारा उसका सशोधन करना चाहिए।

दमन नहीं : संशोधन करो

प्रभु ने आत्मा को दमन करने के लिये जो कहा– उसका तात्पर्य है कि आत्मा का सशोधन करो। शास्त्रकारो ने आठ प्रकार की आत्मा बतलाई है। द्रव्य आत्मा, कषाय आत्मा, योग आत्मा, उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, चारित्र आत्मा व वीर्य आत्मा। सिद्ध अवस्था

मे उपर्युक्त आठ आत्माओ मे से प्राय चार आत्माये– ज्ञान, दर्शन, द्रव्य, उपयोग आत्मा ही अवशेष रहती है। कहीं–कही छ आत्माये भी मानी जाती है।

अत स्पष्ट है कि एक ही आत्मा मे स्वभाव–विभाव दोनो अवस्थाओ के सम्मिश्रण हो जाने से उसकी विकृत अवस्था बनी हुई है। उसे सशोधित करना है। काषायिक विभावो को आत्मा से अलग हटाना होगा।

रक्षाबन्धन : आत्मा की रक्षा हो

आज रक्षाबन्धन का भी प्रसग है। आज जो धागे बाधने की रस्म अदा की जाती है उसके प्रति कुछ विचार करना आवश्यक है। धागा बाधना महत्वपूर्ण कार्य है, परन्तु धागा बाहर का नहीं हो, धागे को गुण भी कहा जाता है, गुण का धागा यदि आत्मा के बाध दिया जाए अर्थात् आत्मा की रक्षा की जाए। आत्मा जिन तत्वो से दब रही है उनको दबा दिया जाए तो आत्मा का निर्मल ज्ञान प्रकट हो सकता है। शास्त्रकारो ने कहा है –

सव्वओ पमत्तस्स भय
सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भय

प्रमत्त को सब ओर से भय रहता है। अप्रमत्त को किसी भी प्रकार का भय नही रहता। अगर आत्मा की रक्षा करनी है, उसे निर्भय बनाना है तो अप्रमत्त भाव जागृत करना होगा। जब तक प्रमत्त स्थिति रहेगी, विषय कषाय आत्मा मे भरा रहेगा, तब तक आत्मा की रक्षा नही हो सकती है। आत्मा की रक्षा करने के लिए अप्रमत्ताचरण अपनाना होगा। विषय–कषायो को दमित करना होगा। आत्मा का इनसे सशोधीकरण करना होगा। तभी वास्तविक रक्षा होगी।

पौराणिक आख्यान

रक्षाबन्धन से सम्बधित घटनाये सम्भव हे आप प्रति वर्ष सुनते

होगे। भारत मे दो सस्कृतिया प्रख्यात है– श्रमण सस्कृति और ब्राह्मण सस्कृति। जहा ब्राह्मण सस्कृति मे प्रचलित हे कि देव और दानवो मे सघर्ष छिडा। दानवो का राजा बलि कुछ ऐसा अनुसधान कर रहा था कि जिससे वह देवो पर हावी हो जाना चाह रहा था ओर देवो को दबाकर, देवो के गोरव को नष्ट करके दानवो का साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। इधर देव विष्णुजी के पास गये ओर अपना आत्म निवेदन किया कि हम दानवो से दबते हुए चले जा रहे हैं। हमारा गोरव समाप्त हो रहा हे। दानवो की स्थिति बढ रही है। आप पधारिए ओर हमारी रक्षा कीजिए। तब विष्णुजी पहुचे। उन्होने बौना रूप बनाया, बलि को दबाया और देवो के गौरव को कायम रखा। यह कथा भाग आपके सुनने मे आता होगा। मैं थोडे मे इसका सार दे रहा हू। जहा ब्राह्मण सस्कृति मे पुराणो की दृष्टि से दानवो की, राक्षसो की जो स्थिति थी, तो विष्णु ने उनकी शक्ति को दबाया ओर देवो की रक्षा की तथा उनको शान्ति दी।

जैन परम्परा की कथा

जैन सस्कृति मे अकम्पन आचार्य सात सौ शिष्यो के साथ उज्जेन मे पधारे। उज्जैन के सम्राट के दीवान वृहस्पति आदि नास्तिक थे। आत्मा के स्वरूप को नहीं मानते हुये भोतिकता को प्रश्रय देते थे। सन्तो की मजाक उडाते थे। धार्मिक जीवन को खराब समझते थे। क्रूर वृत्ति वाले थे। खास तौर पर श्रमण सस्कृति पर उनकी अधिक कूरता थी। सम्राट कभी अकम्पनाचार्य के दर्शनो के लिये जाने की तैयारी करने लगा तो दीवान ने कहा– कि क्या पडा हे वहा ? कोई तथ्य नहीं है परन्तु सम्राट गये तो उनको भी जाना पडा साथ मे। अकम्पन आचार्य को पहले ही जानकारी थी, अत सब शिष्यो को सूचना कर दी कि सम्राट आ रहे हैं, परन्तु उनका दीवान जिज्ञासु वृत्ति वाला नही हे। वह दूसरो को परास्त करके स्व अहकार को तृप्त करना चाहता है। ऐसे व्यक्तियो से बोलना श्रेयस्कर नहीं है। सम्राट उन सब अधिकारीगणो के साथ दर्शन करके बाहर निकले

तो वृहस्पति आदि नास्तिक मत वालो ने मजाक की कि कुछ बोले नही। अरे ! कुछ आता तो बोलते ! बस ! मूक बनकर बैठ गये। योग से रास्ते मे आचार्य श्री के दो शिष्य भिक्षावृत्ति लेकर आ रहे थे। सम्राट ने एक वृक्ष के नीचे, उनके दर्शन किये। पीछे से दीवान आदि भी पहुच गए और उनसे प्रश्न करने लगे। उन्होने उसी ढग से उसका जवाब दिया, जिसे सुन उनके अहकार की स्थिति डावाडोल हो गई।

जब व्यक्ति के अहकार को चोट लगती है तो वह तिलमिला उठता है। दीवान ने देखा कि अरे ! इनमे तो ज्ञान–विज्ञान बहुत है। यदि ये कुछ दिन टिक गए तो हमारी अहकार की वृत्ति पनप नहीं सकेगी। रात्रि मे षडयत्र रचा– प्लान बनाया और मुनियो की घात करने की सोची, नगी तलवारे लेकर निकल गए। अकम्पन आचार्य ने अपने ज्ञान के माध्यम से दोनो शिष्यो से पूछा कि तुम्हे रास्ते मे कोई मिला था ? उन्होने कहा– हा सम्राट और दीवान मिले थे, दीवान ने हमसे प्रश्न किए थे और हमने उत्तर दिए। आचार्य श्री ने कहा कि मैंने शिष्यो को आदेश दिया उसके पहले ही तुम भिक्षा के लिए चले गए। इसमे तुम्हारा दोष नही है। परन्तु बोलना नही चाहिए था। क्योकि ऐसे अहकारी पुरुष से बोलना योग्य नही रहता, तुम्हारे उत्तर से वे खिन्न हो गये हैं, सात सौ मुनियो पर आपत्ति आने वाली है, अत तुम शक्ति से रोको। दोनो मुनि सूर्यास्त से पहले रात्रि निवास करने की सोच लेते हैं। शास्त्रीय विधान है कि आवश्यकता के अनुसार वृक्ष के नीचे भी मुनि ठहर सकते हैं। आचार्य की आज्ञा से वे मुनि उसी वृक्ष के नीचे ध्यान से खडे हो गए। आध्यात्मिक उज्ज्वल धारा बहने लगी। आधी रात्रि को दीवान और उसके साथी जहर लिप्त नगी तलवारे लेकर आए। वे सात सौ मुनिराजो की घात करना चाहते थे। किन्तु रास्ते मे वे दोनो मुनि मिल गए। सोचा कि पहले यहीं मगलाचरण कर लो, तलवारे उठा ली, मारने के लिए। तलवारे उठ तो गई परन्तु आध्यात्मिक वल जहा होता है, वहा भौतिक बल टिक नहीं सकता।

आध्यात्मिक वल की ताकत बहुत बडी होती है, दोनो मुनि

ध्यानस्थ खडे थे। उनके अन्दर से कोन सा प्रवाह निकल रहा था– क्या प्रवाह चल रहा था, में उसको नहीं कह रहा हू। रक्षा बन्धन पर जो मुद्दे की बात कहनी है वही कहना चाह रहा हू। उनकी तलवारे ऊपर ही रह गयी। हाथ खम्भे की तरह खडे ही रहे। रात्रि भर दोनो मुनियो के ध्यान था, ओर इनके भी ध्यान हो गया है। भगवान ने चार प्रकार के ध्यान बताए है– आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान। चार ध्यानो मे से यह आत्मा किसी न किसी ध्यान मे रहती ही हे। दीवान आदि का ध्यान कूर था, तलवारे लेकर वहा खडे हुए थे, और मुनियो का ध्यान धार्मिक था। जब प्रात काल हुआ, सूर्य की प्रभा आने लगी। लोग बाहर निपटने के लिये आने लगे। लोगो ने देखा तो उनके रोगटे खडे हो गए कि अरे ! मुनियो पर उन्होने तलवार उठाई। ये सारे विश्व के प्राणियो का घात करने वाले हैं। क्योकि सारे प्राणियो के सरक्षक अभय दान देकर चलने वाले इन धर्मी पुरुषो पर तलवार उठाई है। सम्राट को सूचना दी गई कि आप कैसे सोये हुये हे ? कैसा दीवान रखा है ? सुनते ही सम्राट घटनास्थल पर दौडकर गये ओर उनको पकडवाया। प्रात काल हो गया था। अत मुनिराज ध्यान पूर्ण कर आचार्य प्रवर की सेवा मे पहुच गए। सम्राट ने उन दीवान आदि को देश निकाला दे दिया। दीवान ने सोचा कि इन मुनियो ने हमारी बेइज्जती कराई हे। अब इनसे बदला लेना है। वह दीवान वहा से चलकर एक चकवर्ती महाराज के राज्य मे पहुच गया ओर अपनी कला से वहा का मन्त्री बन गया

आचार्य श्री भी सात सौ शिष्यो के साथ उसी नगर मे पहुच गये। दीवान ने वहा ऐसा कार्य किया कि वहा के राजा के मुह लग गया। एक दिन सम्राट ने खुश होकर वरदान मागने को कहा। तो इसने कहा– अभी आपके भण्डार मे रहने दीजिए जब आवश्यकता होगी तब माग लूगा। अब इसने सोचा अकम्पन आचार्य आ गए हें ओर चकवर्ती का छ खण्डो मे राज्य हे। राजा ने वरदान देने के लिए कह रखा हे। अब अच्छा मौका है, मेरे अपमान का बदला लेने का। अब वरदान माग लू। उसने सम्राट से वरदान मागा। महाराज ने पूछा क्या वरदान

मागते हो ? दीवान ने कहा– हुजूर ! मै आठ रोज के लिए सर्व सत्ता के साथ राज्य मागना चाहता हू– वह मिलना चाहिये। आप अन्त पुर मे चले जाये, किसी प्रकार का आपका हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। चक्रवर्ती महाराज ने वचन दे रखा था। अत सारा राज्य मत्री के हाथो मे देकर महल मे चले गये। दीवान गद्दी पर बैठ गया। इसने सात दिनो मे सात सौ मुनियो का काम तमाम करने का विचार कर लिया। कोई कुछ भी नही कर सकता था। सारे नगर मे तहलका मचा हुआ था कि अब क्या होगा ? इसी समय दो मुनि गुरु के शिष्य किसी गुफा मे ध्यान कर रहे थे। स्वाध्याय कर रहे थे। आकाश का पलेवन करने के लिये उनके गुरु बाहर निकले तो देखा कि श्रावण मास की पूर्णिमा है आज श्रावण नक्षत्र काप रहा है। इसे देख जोर से बोल उठे कि "अहो कष्टम् !" "अहो कष्टम् !" "भयक विपत्ति ! भयकर विपत्ति !" ये गुरु के शब्द शिष्य ने सुने तो सोचा कि गुरुदेव पर कोई आपत्ति आ गई है, बाहर आया और पूछा– गुरुदेव क्या हुआ ? गुरुदेव ने कहा कि आज सूर्योदय होते ही सात सौ मुनियो की घात होने वाली है। शिष्य ने पूछा कि ऐसे समय मे कुछ हो सकता है ? तो गुरुदेव ने कहा कि ऐसे समय मे रक्षा करने वाली ताकत तो लब्धिधारी मुनि मे हो सकती है। चक्रवर्ती महाराज के छोटे भाई जो मुनि बने हुए हैं वे अन्य गुफा मे ध्यान कर रहे हैं, उनमे यह लब्धि है। वे यदि रक्षा का बीडा उठाये तो साधको की बहुत बडी रक्षा का प्रसग है। पर उन्हे सूचना कौन दे ? तब शिष्य ने कहा कि गुरुदेव ! कुछ लब्धि तो मुझ मे प्रकट हुई है। मै वहा तक जा तो सकता हू, परतु आ नही सकता हूँ। तब गुरु ने का कि कोई बात नहीं। तुम वहा पहुच जाओ और उनको सूचना दे दो कि लब्धि प्रयोग से सूर्योदय होते ही राजधानी मे पहुच जाये।

शिष्य गया ओर विष्णुकुमार मुनि के समक्ष सारी स्थिति स्पष्ट की और कहा कि आप वहा पहुचिए और रक्षा कीजिए। विष्णुकुमार मुनि लब्धि प्रयोग से वहा पहुचे ओर सम्राट से जाकर मिले। कहने लगे–

राजन् ! यह क्या हो रहा हे ? आपने छ खण्ड साधे ओर ऐसे ऐरे गेरे दीवाने को हुकूमत की इजाजत दे दी। उसने ऐसा ऐलान करवा दिया। कि सूर्योदय होने से पहले–पहले सात सो मुनियो की घात हो जाएगी। सम्राट ने कहा, – क्या करूँ ? मेने तो जवान दे दी है। अव में कुछ भी नही कर सकता हूँ। सूर्योदय होने पर ही में मुँह खोल सकता हूँ। विष्णु कुमार मुनि ने कहा कि – यदि पहले ही यह मामला हो जायेगा तो आप क्या कर सकते हैं? तो सम्राट ने कहा कि उसमे छ खण्ड की ताकत हे। मुझे भी जेल मे डाल सकता हे। परन्तु आप यह कार्य कर सकते हें। तब विष्णु कुमार मुनि ने वोना रूप वनाया ओर दिवान के पास पहुँचे। दिवान अभी चक्रवर्ती पद को लेकर चल रहा था। उसे जाकर कहा कि आप यहाँ यज्ञ कर रहे हो, तो दान देने की स्थिति भी होनी चाहिये। दिवान ने कहा– हाँ दे सकता हूँ आपको। परन्तु उन मुनिराजो को नही दे सकता हूँ। मुनि ने कहा उनको मत दीजिये। परन्तु मे तो चक्रवर्ती का छोटा भाई हूँ ओर मुनि वनकर आया हूँ। मुझको स्थान दीजिये। उसने पूछा क्या चाहते हो? विष्णु कुमार मुनि ने कहा – कि साढे तीन कदम जमीन चाहिये। दिवान ने कहा – बस। साढे तीन कदम जमीन चाहिये। अच्छा ! भूमि ले लीजिये। ज्यो ही दिवान ने भूमि को देने के लिये वचन दिया, तव विष्णु कुमार मुनि ने विराट रूप बनाकर तीन पेर मे सारी जमीन माप ली, अब आधा पैर कहाँ रखा जा सकता था?

पुराण की कथा के अनुसार जो यह वतलाया जाता हे कि उस दिवान पर पेर रखकर उसे पाताल भेज दिया, किन्तु विष्णु कुमार मुनि परम दयालु थे, जैन परम्परा के अनुसार उन्होने दिवान की बुद्धि का दमन कर दिया, उसे प्रतिज्ञा करवा दी कि कभी ऐसा अनर्थकारी कार्य नहीं करूँगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करवाकर उसे अभय दान दे दिया। इस प्रसग से जैन परम्परा अनुसार रक्षा बधन का पर्व सामने आता है।

ऐतिहासिक घटनाएं

रक्षा बधन के महात्म्य को स्पष्ट करने वाली नागोर आर

चित्तौड की ऐतिहासिक घटनाए भी महत्त्वपूर्ण हैं –

जब मेवाड के शासक राणा सागा थे। उस समय गुजरात के सम्राट बहादुर शाह ने मेवाड के गढ चित्तौड को हस्तगत करने के लिये उसके चारो ओर घेरा डाल दिया। कई वर्ष व्यतीत हो गये इस प्रकार के घेराव मे रहते हुए चित्तौड को। प्रजा का जीवन अस्त व्यस्त हो गया। इधर मेवाड, शक्तिशाली सम्राट, बहादुर शाह का सामना करने मे अपने आपको असमर्थ महसूस कर रहा था। उस समय मेवाड एक विकट मौड पर खडा था, सभी मेवाडी चितित थे।

ऐसी स्थिति मे मेवाड की महारानी कर्णवती ने मेवाड की सुरक्षा के लिये बडी सूझ–बूझ का परिचय दिया। उसने कूल, वश का विचार किये बिना ही मानव जाति की एकता को लक्ष्य मे रखकर मेवाड की रक्षा के लिये दिल्ली के बादशाह हुमायूँ को रक्षा सूत्र "राखी" भेज दी।

राखी भेजने का तात्पर्य होता है, तुम मेरे भाई हो, अब मेरी रक्षा तुम्हारे हाथो मे है।

बादशाह हुमायूँ, कर्णवती के रक्षा सूत्र को देख सोचने लगे कि अहो! मेवाडी क्षत्राणी ने मुझे राखी भेजकर भाई बनाया है, अत मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मै जाकर महारानी के साथ ही सारे चित्तौड का रक्षण करूँ। बादशाह ने बग देश की विजय के लिये सजाई हुई सेना को मोड दिया और विजय के स्थान पर रक्षा के लिये चल पडे बादशाह, अर्थात चित्तौड की रक्षा के लिये दिल्ली से मेवाड की ओर। बादशाह की विराट शक्ति के सामने बहादुर शाह की शक्ति कहाँ टिकने वाली थी? अत मे बहादुर शाह पराजीत हुआ और चित्तौड की रक्षा हुई।

हुमायूँ ने यह नही सोचा कि बहादुरशाह तो मेरा जाति भाई है, उसे पराजीत कर एक विधर्मी की रक्षा क्यो करूँ? वहाँ जाति का महत्व नही रहा, वहाँ रक्षा का महत्व बन गया। रक्षा सूत्र की पवित्रता

से हुमायूँ के विचारो मे कितना परिवर्तन हो गया था।

यह है चित्तौड की घटना। ठीक ऐसी ही एक और घटना नागौर की भी है। वह भी रक्षा सूत्र की पवित्रता का ससूचन करने वाली है।

नागौर के शासक थे दिलीपसिह और उन्हीं के समीपस्थ नगर के शासक थे रूद्रसिह। पहले तो उन दोनो मे अच्छी मैत्री थी। बाद मे कुछैक कारणो से परस्पर वैमनस्य बढ गया और इधर नागौर को भी गुजरात के गयाउद्दीन ने घेर लिया था। गयाउद्दीन की सेना भी बहुत विशाल थी। दिलीपसिह के पास न तो विशाल सेना ही थी और न वीरता ही। ऐसी स्थिति मे नागौर की हार निश्चित थी। सारी जनता भयभीत थी।

ऐसे समय मे शासक दिलीपसिह की कन्या पन्ना की दीर्घ दृष्टि एव रक्षा सूत्र की पवित्रता ने नागौर की रक्षा कर ली। हुआ यो कि पन्ना ने समीपस्थ नगर के राजा रूद्रसिह, जो कि उसके पिता के शत्रु थे, उन्हे रक्षा सूत्र भेज दिया। रक्षा सूत्र भेजते समय उसने यह विचार नही किया कि वह तो मेरे पिता का शत्रु है, रक्षा करने के लिये आयेगे या नहीं? उसे विश्वास था कि शत्रुता चाहे जितनी गहरी हो, लेकिन, रक्षा सूत्र की पवित्रता को लक्ष्य मे रखकर शासक रूद्रसिह अवश्य आयेगे। ऐसा ही हुआ। रूद्रसिह के हाथो मे ज्योही राजकुमारी पन्ना की राखी आई त्योही वे सारे वैर–विरोध को भूलकर नागोर पर आये सकट को हटाने के लिये, प्राणो की बाजी लगाने के लिये तैयार हो गये। अपनी सेना को सुसज्जित कर गयाउद्दीन का मुकाबला करने के लिये मोर्चे पर आ डटे। क्षत्रियत्व के सामने गयाउद्दीन ने घुटने टेक दिये और नागौर की रक्षा हुई।

ऐसे एक नही अनेक प्रसगो से इतिहास के पन्ने भरे पडे हैं जो रक्षा सूत्र की पवित्रता का सन्देश दे रहे हैं। इन ऐतिहासिक घटनाओ से, तथा आज के प्रसग से सभी को शिक्षा लेनी चाहिए।

रक्षा बन्धन और आज का वातावरण

क्या आपने भी जीवन मे ऐसा प्रसग उपस्थित किया? प्रात काल, जैसे ही प्रकाश आया कि बहने थाल सजाकर अपने–अपने भाई के यहॉ पहुँच गई। भाई ने सीधा हाथ सामने किया और चट उसने धागा बाध दिया। उसके बदले मे भाई से कुछ लेकर सतुष्ट हो गई। परन्तु इतने मात्र से इतिश्री नही होती। इस धागे बाधने पर आपके ऊपर बहन की रक्षा की जिम्मेदारी आ जाती हे। वह सकट मे, खतरे मे हो तो, बिना कहे भाई उसकी रक्षा करे। आज कितनी बहने बन्धन मे और खतरे मे हैं। परन्तु रक्षा करने वाले कितने है ? आज कितनी बहिने भूखो मर रही है। उनके बच्चो का क्या हाल हो रहा है, किस दुर्गति मे वे पहुच रही है।

बन्धुओ ! मै क्या कहू ! आज सामाजिक क्षेत्र मे सामाजिकता कितनी नष्ट हो रही है। क्या कोई भाई है रक्षा करने वाला ? समाज मे विषमता बढ रही है, उसको समाहित करके जनता की रक्षा करने का सामर्थ्य है किसी मे ? कई फॉरेन के दृष्टान्त सुनते है। जिनको हम अनार्य मानते हैं और यह मानते है कि हम आर्य हैं। भारतीय आर्य की बात कहते है परन्तु वे कर्तव्य करने योग्य कर्तव्यो को धारण करके चल रहे है या छोड कर चल रहे हैं ? आज मनुष्यो का गौरव, व्यक्तियो का गौरव, धर्म का गौरव, समाज का गौरव, ये सब रक्षा बाधने के लिए तत्पर है, कोई भाई रक्षा बाधने को तैयार हैं? ये सब तरह के गौरव, धागा बाधने को तैयार हैं। जब उनके ऊपर आपत्ति आती है, समाज, राष्ट्र और विश्व का गौरव नष्ट होता हो तो भारतीय अपना कर्तव्य अदा करने को तैयार है या नही ? जहा हम विदेशियो को अनार्य कहते हैं, परन्तु वे समाज, राष्ट्र के लिए कितने तत्पर हैं ? जहा तक मैने सुना है, उसके आधार पर कह रहा हूँ, तो हिन्दुस्तानी गौरव का ठेका लेकर चल रहे हैं कि हम आध्यात्मिकता के गौरवशाली व्यक्ति हैं। ऐसा एक व्यक्ति जापान मे पहुचा। वह रेल मे बैठकर जा रहा था। तब उसे फलो की आवश्यकता थी। वह सब

जगह फिर आया परन्तु कहीं पर भी फल नही मिले, धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। अब उसके धैर्य का धागा टूट गया। देखिए—आर्य देश वालो के धैर्य का धागा कितनी जल्दी टूटता है। आपे से बाहर होकर कहने लगा कि यह कैसा निकम्मा देश है, जगली देश है कि जहा पर फल–फ्रूट भी नही मिलते हैं। यह बात किसी व्यक्ति को लेकर नही कही, परन्तु वह सामान्य रूप मे बडबडा रहा था। उसी रेल मे जापान का ही एक साधारण सा मजदूर था। परन्तु उसके मन मे देश के प्रति गौरव था। उसने सुनकर सोचा कि मेरे देश की निन्दा नही होनी चाहिए। जिसको अपने देश की निन्दा का ख्याल रहता है, तो वह अपनी निन्दा का, देश की समाज की निन्दा का ख्याल रखता है। उस गरीब जापानी को अपने राष्ट्र का गौरव रखना था। वह झट से भागा हुआ गया। उसके घर मे जो खाने के लिए फल रखे थे, वे सारे उठाकर ले आया और हिन्दुस्तानी महाशय के सामने रख दिए। फलो को खाने के बाद हॅसता हुआ महाशय पैसे देने लगा। उसने कहा मुझे पैसे नही चाहिये। तो पूछा कि क्यो नही चाहिए? तब उसने कहा कि आप हमारे देश मे आये हैं, तो हमारे देश की निन्दा मत कीजिये, बस यही अपेक्षा है।

देखिये ! अपने देश की रक्षा का कितना ख्याल है, एक साधारण मजदूर को भी। क्या है भारतवासियो को भारत का गौरव ? भारत की रक्षा के लिये क्या स्वार्थ समर्पण करने को तैयार हैं ? परिवार, पडौसी, गॉव, नगर एव राष्ट्र की सुरक्षा की कितनी, क्या भावना दिलो मे काम कर रही है, जरा अपने–अपने दिलो को टटोल कर देखिए। जहा परिवार की निन्दा होती हो, तो वहा भी मनुष्य गर्दन नीची करके चले और समाज एव राष्ट्र की निन्दा होती हो तो गर्दन नीची करके चले, जहा बाहर के कर्तव्य का, बाहर के गौरव की रक्षा का भी ख्याल न करे तो वह आध्यात्मिकता की रक्षा क्या कर सकता है ? जैसा गौरव उस जापानी व्यक्ति मे था, यदि ऐसा ही हिन्दुस्तानी में गौरव जाग जाए तो भारत का उत्थान होते देर नहीं लगेगी। पर यहॉ तो एक भाई की इज्जत लूटी जा रही है तो दूसरे भाई हॅस रहे

है। अरे ! यह नही सोचते है कि आज इसके घर मे आग लगी है तो कल मेरे घर मे भी आग लग सकती है। व्यक्तियो को एकत्व भाव से चलना चाहिये। व्यक्ति, समाज राष्ट्र की गिरावट को देखते हुये आज रक्षा बन्धन पर सभी को चिन्तन करना है, इसी के साथ मैं अपनी बात भी कह दू।

क्यो न मेरे भाइयो के राखी बॉध दू। अरे ! आप तो हॅसने लगे। आप सोचते होगे महाराज ! आप तो साधु बन गए, अब क्या राखी बॉधोगे ? भाई ! मै उस डोरे वाली राखी के लिए नहीं कह रहा हूॅ। यह तो वितराग देव का शासन है और आप उसके पीछे गौरवान्वित है। इस शासन के अनुरूप आध्यात्मिक जीवन की राखी बॉधना चाहता हूॅ। बधवाना चाहेगे क्या ? यदि हॉ ! तो हमारे ऊपर आपकी जिम्मेदारी आ गई है। रोटी, कपडो की जिम्मेदारी नही ! परन्तु हम साधु जीवन मे चल रहे है। तो हम अपने कर्तव्य का पालन कर रहे है या नही ? इसकी देख–रेख और गौरव की रक्षा आपको करनी है। आप भी अपनी स्थिति से करे और हम भी अपनी स्थिति से चले। यह नही सोचे कि यह इनका काम है और यह उनका काम है। जहॉ गौरव नष्ट हो रहा हो तो उसकी रक्षा प्रत्येक का काम है। मै जिम्मेदारी डालता हूॅ आप पर कि मुझ मे या मेरे सन्तो मे या सतियो मे कोई भी गलती हो या आपको भ्रम हो तो उसका निवारण करे, जिससे विशुद्ध चरित्र के परिपालन मे आप सहायक बनेगे। यदि कोई गलती होगी तो तदनुरूप निवारण किया जाएगा। यदि नही होगी तो आपकी शका का समाधान हो जाएगा।

अन्त मे मै यही कहना चाहता हूॅ कि इस रक्षा बन्धन के प्रसग से भव्य आत्माये जन्म–जन्मान्तर से कर्मो से बद्ध अपनी आत्मा की रक्षा करने के लिये, अह, ममता, कषाय आदि का शमन करेगे, आत्मा का समीक्षण करेगे तो अवश्य ही एक दिन इन सभी बन्धनो से अपने आप की शाश्वत रक्षा कर सकेगे। □□

आत्मा का रक्षक कौन है ?

- अवलम्बन आत्मा को
- नाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा
- चक्रवर्ती सम्राट का वैभव
- भौतिकता–अनुरागी आज का मानव
- शाश्वत रक्षा के लिये अन्त समीक्षण
- वैभाविक परिणतियॉ
- दो व्यापारी
- झोपडी के अन्दर
- व्यापारी और योगी
- योगी का विचार धन प्राप्ति के लिये निर्देश
- दो टार्च
- गुफा मे प्रवेश–पहले व्यक्ति की चचलता
- दूसरे को रत्नागार की प्राप्ति
- दृष्टान्त और दृष्टान्तिक

नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा ।
तुम पि ते सिं नालं ताणाए सरणाए वा।।

—आचाराग सूत्र– 1/2/1

हे पुरुष । ये स्वजन तुम्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हैं। तुम भी इन्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो।

अनादि अनन्त काल से आत्मा के साथ वैभाविक परिणतिया चली आ रही हैं। ये वेभाविक परिणतिया कभी आत्मा को त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो सकती। आज तक कोई भी आत्मा भौतिक आसक्ति से सबद्ध हो अपने आपकी रक्षा नही कर पाई। स्वत्व की रक्षा के लिये वैभाविक वृत्तियो का विलगीकरण आवश्यक है।

चित्त अणगार और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हें।

श्री श्रेयास जिन अन्तर्यामी, आतमरामी नामी रे ।
अध्यातम मत पूरण पामी, सहज मुक्ति गति गामी रे।।

शास्त्रीय विषय को रखने से पहले प्रतिदिन चौबीस तीर्थंकरो मे से किसी तीर्थंकर की स्तुति का प्रसग आपके समक्ष उपस्थित कर देता हूँ।

अवलम्बन आत्मा को

जब आत्मा दु ख और द्वन्द्वो से जूझ रही होती है, तब उस आत्मा को शाति प्राप्ति के लिये अवलम्बन चाहिये। विश्व की प्रत्येक कर्मबद्ध आत्माए यही सोचती है कि मैं इन दु ख द्वन्द्वो से ऊपर उठू आर्त्त–रौद्र ध्यान से रहित बनू। लेकिन यह अवस्था कब बन सकती है ? मात्र प्रभु गुण–गान से अभीष्ट साध्य सिद्धि नहीं हो सकती। किन्तु भगवान की प्रार्थना के माध्यम से अन्त मे चिन्तन करना होगा। जब भगवान का सिद्ध स्वरूप मनुष्य की अन्तरात्मा मे उभरता है, तब इस आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती है। तृषित व्यक्ति को पानी मिलने से जिस प्रकार शान्ति मिलती है, डूबते हुए व्यक्ति को जिस प्रकार तख्ते का सहारा मिलने पर जिस शान्ति की अनुभूति होती है उससे भी कई गुनी अधिक शान्ति व्यक्ति को, प्रभु की प्रार्थना के साथ एकावधानता लेकर परमात्म स्वरूप के चिन्तन करने पर मिलती है।

नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा

आपके समक्ष शास्त्रीय रूपक चल रहा है– चित्त मुनि और चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का। कहॉ तो चित्त अणगार उन्नति के चरम छोर पर आरोहण करने जा रहे है और कहॉ ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती पतन के महाद्वार मे प्रवेश करने जा रहा है। चक्रवर्ती पद मिल जाना शक्य है परन्तु उसी पद से जीवन का उत्थान हो जाना शक्य नही है। धन, परिवार, वैभव से अगर कोई व्यक्ति यह कल्पना करता हो कि मेरा कल्याण हो जाए तो यह त्रिकाल मे भी सम्भव नही है। धन–दौलत,

माता–पिता, स्वजन सम्बन्धी कोई भी उसकी रक्षा करने मे समर्थ नहीं है। शास्त्र चुडामणिक आचाराग सूत्र मे प्रभु महावीर ने स्पष्ट सकेत दिया है।

नाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा ।
तुम पि तेसि नाल, ताणाए सरणाए वा।।

हे पुरुष ! ये स्वजन तुम्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हैं। तुम भी उन्हे त्राण या शरण देने मे समर्थ नही हो।

विशाल ऋद्धि और समृद्धि का स्वामी, भौतिकता मे आकठ डूबे चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त की रक्षा कोई नहीं कर सका। छ खण्ड का विशाल साम्राज्य, शत्रुओ को परास्त करने वाला विस्तृत सैन्य दल, अखूट खजाना, रूपवती नारियो का अन्त पुर, हजारो–हजार आज्ञा पालक व सम्राट आदि कुछ नहीं कर सके। मृत्यु की अन्तिम बेला मे कुरुमति–कुरुमति चिल्लाता हुआ ब्रह्मदत्त महादु खो के द्वार की ओर प्रयाण कर गया।

बन्धुओ ! विचार करने की बात है जिसके पास अपार धन–वैभव, सुख साधना की सामग्री उपलब्ध थी वह भी उनकी रक्षा नही कर सकी तो आपके पास कितनी धन सपत्ति है ? आज के अरबपति–खरबपति भी चक्रवर्ती की धन सपत्ति रूप समुद्र के सामने बूद के तुल्य भी नहीं।

चक्रवर्ती सम्राट् का वैभव

कितना वैभव था चक्रवर्ती सम्राट के पास ? इसकी जानकारी के लिये एक रूपक ही पर्याप्त होगा। चक्रवर्ती महाराज के राज्य के रसौडे मे 72 मन हींग लगती थी। अब विचार करिये कितना भोजन निष्पादित होता होगा ? कितनी सख्या मे लोग भोजन करते होगे। तुलना करिए आप अपने घर की– कितनी हीग पडती है भोजन निष्पादन मे ? यह तो एक भोजन की बात हुई। इससे आप उनके

विशाल राज्य का अनुमान लगा सकते है ?

ऐसे विशाल राज्य के स्वामी ब्रह्मदत्त की भी कोई मृत्यु से त्राण–रक्षा नही कर पाया तो क्या आपकी मृत्यु से त्राण–रक्षा हो सकेगी ? सज्जनो । गहराई से विचार करने का विषय है।

भौतिकता–अनुरागी : आज का मानव

आज का मानव तुच्छ सिद्धि को पाकर भी फूला नहीं समाता है। आज के व्यक्तियो की प्राय यह धारणा वन गई है कि धन मिल गया तो सब कुछ मिल गया। धन के गुमान मे वह सत–दर्शन, सामायिक–प्रतिक्रमण, व्रत–नियम, तप–त्याग, दया–दान सब कुछ भूल बैठता है। यही सोचता रहता है कि इस सामायिक–प्रतिक्रमण की क्या आवश्यकता है ? तप–त्याग रूक्ष विषय है। इससे कोई मजा नही आता है। न ही इसका कोई विशेष फल दिखलाई देता है। बस जो कुछ रग–राग मिलता है वह इस धन दौलत से ही। धन के पीछे पागल बना वह व्यक्ति यह नहीं सोच पाता कि जब मेरी मृत्यु सन्निकट आयेगी तो यह धन सम्पत्ति मुझे बचाने वाली नही है। यह पत्नी, पुत्र, परिवार बचाने वाले नही है। इन सब बातो को भूल कर सामायिक, सवर, पौषध, व्रत–नियम, त्याग–प्रत्याख्यान करने से भी कतराने लगता है। उसकी दृष्टि मे ये सब उपेक्षणीय हो जाते है।

शाश्वत रक्षा के लिये अन्तः समीक्षण

किन्तु बन्धुओ । विचारने का विषय यह है कि यह सपत्ति मुझे मृत्यु से बचाने वाली नही है । ये माता–पिता, भाई–बहिन, सगे–सम्बन्धी कोई भी मुझे बचाने वाले नही है। सोना–चादी, धन–वैभव सभी यही रह जाने वाले है। जिस शरीर का मैं गर्भ से सपोषण कर रहा हूँ, जीवन के अधिकाश समय उसी मे व्यतीत हो रहे है। नीति–अनीति, धर्म–अधर्म को भूल कर जिस शरीर को सवर्धन करने मे लगा हुआ हूँ, वह शरीर भी यही जल कर राख हो जाएगा

अर्थात् ऐसा शरीर भी मेरा त्राण–रक्षण करने मे समर्थ नही है। मानव मन की तो बात जाने दीजिये– विशिष्ट शक्ति सम्पन्न देव तन भी स्थायी रूप से नही रह सकता। इतना सब कुछ होने पर भी मनुष्य कानो मे तेल डाले सोया रहे कुछ भी उपक्रम न करे तो ऐसा मानव–जीवन एक बार नही अनेक बार भी क्यो न प्राप्त कर ले, पर आत्मीय तत्त्व की अन्वेषणा नहीं कर सकता। आत्मा की शाश्वत रखा के लिये अवश्य ही शरीर से मोह छोड कर अन्त समीक्षण करना होगा।

वैभाविक परिणतियां

अनादि अनन्तकाल से विभाव की परिणतिया आत्मा के साथ चली आ रही है। यह वेभाविक वृत्तिया इस रूप से आत्मा के साथ सबद्ध हो चुकी है कि स्वय आत्मा उन्हे अपना निजी स्वरूप ही मान बैठी है। उन विभाव की परिणतिया से स्वत्व का विलगीकरण मानव जीवन मे ही पूर्णत हो सकता है। सह विलगीकरण तभी सभव है जबकि मानव इस दिशा मे गतिशील बने। कितना ही लम्बा रास्ता हो यदि उस दिशा मे चलने वाला व्यक्ति, क्यो न धीरे–धीरे ही चल रहा हो, दीर्घ कान्तार को अन्तत पार कर ही लेता है। विभाव की परिणतियो के विलगीकरण का पुरुषार्थ यदि गतिशील है तो एक दिन आत्मा अपने स्वत्व को परिपूर्ण प्रकट कर सकती है। वैभाविक वृत्तियो मे ही रमने वाला प्रेय मार्ग का राही कभी भी शाति की अनुभूति नहीं कर पाता। एक रूपक देता हूँ, इस बात को समझने के लिये।

दो व्यापारी

एक गाव मे दो व्यापारी रहते थे। छोटा गाव होने के कारण विशेष व्यापार नही चल पाता था। थोडा बहुत घर खर्च निकल जाता था। इससे व्यापारियो की लालसा पूरी नहीं हो पाती थी। दोनो ने परस्पर विचार किया और एक दिन अधिक धन कमाने के लिये, पेट नहीं पेटी भरने के लिये गाव छोड कर शहर की ओर प्रस्थान कर

गये।

प्राचीन युग मे आज की तरह साधन नही थे, मोटर–कार, हवाई जहाज आदि जिन साधनो से सुदूर यात्रा स्वल्प समय मे तय की जा सके। उस समय तो प्राय पैदल या ऊट, घोडे, बैलगाडी आदि पर यात्रा की जाती थी। ये दोनो व्यापारी पैदल ही यात्रा कर रहे थे। रास्ता कच्चा था ओर रास्ता बताने वाला मार्ग निर्देशक भी कोई साथ मे नही था। चलते–चलते रास्ता भूल गए। घोर जगल मे आ फसे, सूर्यास्त होने की तैयारी थी। क्या किया जाए इस समय, यही चिन्ता उनको सता रही थी। यदि इसी जगल मे रात्रि बिताई जाएगी तो निश्चित ही जगली हिसक जन्तु उनको खा जायेगे। इधर कोई रास्ता भी नजर नही आ रहा था। इसी चिन्ता मे उन्हे पहाड की टेकरी पर एक झोपडी नजर आई, विचार किया क्यो न ऊपर चढा जाए ? झोपडी मे कोई न कोई तो रहता ही होगा न भी हो तो भी अपनी रक्षा तो हो सकेगी। इन्ही विचारो मे खोए, समय की स्वल्पता को देख वे जल्दी–जल्दी पहाड पर चढने लगे।

झोंपड़ी के अन्दर

अन्धेरा होते–होते तो वे झोपडी तक पहुँच ही गये। झोपडी मे जाकर देखा तो वहा उन्हे एक ध्यानस्थ योगी नजर आए। जिनका चेहरा बहुत ही शान्त–प्रशान्त परिलक्षित हो रहा था। परन्तु हीरे की परीक्षा तो जौहरी ही कर सकता है, कगला नही। इन दोनो व्यक्तियो का तो व्यापारी मस्तिष्क था, वे अपने ही दृष्टिकोण से सोचने लगे– यह कोई जगली व्यक्ति लगता है। दिन भर जगल मे घूम–घूमाकर रात को यहाँ आकर पडा रहता होगा।

व्यापारी और योगी

व्यापारियो ने सबोधित किया उस योगी को–अरे ओ जगली ! अमुक शहर का रास्ता कहा जाता है ? योगी बहुत चतुर और

व्यवहार कुशल था। यद्यपि योगी के सासारिक सबध नहीं थे, वह जैन साधु भी नहीं, सन्यासी था। यौगिक साधना की भूमिका पर चल रहा था। जिस साधना के बल पर वह व्यक्ति की प्रकृति को पहचानते देर नहीं करता था। योगी ने इनको देखते ही पहचान लिया कि ये कोई व्यापारी हैं किन्तु अभी घबराये हुए हैं। व्यापारियो ने तो योगी को जगली कहा था किन्तु इस उच्चारण से योगी नाराज नही हुआ। वह योगी ही क्या, जो थोडी सी बात के पीछे नाराज (क्रोधित) हो जाए और अपनी परिश्रमसाध्य तप साधना को क्रोधाग्नि मे जला कर भस्म कर डाले ?

योगी ने बहुत ही स्नेह के साथ कहा– भैया? अन्दर आ जाओ, बैठो, कुछ क्लान्ति–परिहार कर लो फिर अगले कार्यक्रम पर विचार करना। व्यापारियो ने योगी की बात को सुनकर विचार किया– अरे ! इसकी भाषा तो बहुत ही शिष्ट सभ्य है। जगलियो की ऐसी भाषा नही होती। दोनो व्यापारी अन्दर आ गए और बैठ गए। योगी ने पूछा कहॉ रहते हो? तब व्यापारियो ने अपनी सारी स्थिति बतला दी और यह स्पष्ट कर दिया कि हम धन कमाने बडे देश मे जा रहे हें। योगी ने कहा–अच्छा ! लेकिन अभी तो रात हो गई है, अत रात्रि विश्राम यहीं कर लो। मालूम होता है तुम दोनो भूखे–प्यासे हो। देखो, पहाडी के उस किनारे मीठे पानी का झरना है, वहॉ पानी पी लो फिर मेरे लिए जो भोजन आया है उसे कर लो।

वास्तव मे इन दोनो को भी बहुत जोर से भूख लगी थी। दोनो ने पहाडी झरने मे हाथ–मुहँ धोकर योगी के लिए आए भोजन को ग्रहण किया, उदर तृप्ति की।

योगी का विचार : धन प्राप्ति के लिए निर्देश

योगी ने विचार किया– इन लोगो को पता नहीं है कि शाति किस मे है? कितना भी धन–वैभव प्राप्त कर ले लेकिन व्यक्ति कभी शाति की अनुभूति नही कर सकता। यह प्रेय मार्ग कभी भी श्रेय मार्ग

करने के बाद–परले किनारे विचित्र प्रकार के रत्नो के ढेर पडे है। जितने चाहो उतने ग्रहण कर सकते हो। लेकिन इस अन्धकार मय गुफा को प्राप्त करने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। मेरे पास दो टार्च हैं तुम दोनो एक एक टार्च ले लो और उसके प्रकाश के सहारे गुफा मे प्रवेश करो। देखो इस बात का ध्यान रखना कि टार्च का प्रकाश सीधा सामने ही रखोगे। इधर उधर नही घुमाओगे। यदि सीधे–साधे चलोगे तब तो गुफा पार कर सकोगे। यदि इधर–उधर देखने का प्रयास किया तो टार्च का प्रकाश मध्य मे ही पूर्ण हो जाएगा। अन्धकार मे सही मार्ग नही मिल पायेगा क्योकि इस गुफा के मध्य अनेक छोटी–छोटी प्रति गुफाएँ हैं जिनमे प्रवेश करने के बाद तो गुफा से निस्तार पाना बहुत मुश्किल है, फिर तो जीवन के प्राणान्त ही हो जाएगे। सीधे–सीधे प्रकाश लेकर चलते रहो, वहॉ रत्न मिल जाएगे। उन रत्नो के प्रकाश से तुम मेरे तक पहुॅच सकोगे। यहा से मै तुम्हे तुम्हारे नगर का सही रास्ता बतला दूगा।

गुफा में प्रवेश–पहले व्यक्ति की चंचलता

दोनो वित्तार्थियो ने योगी की बात को ध्यान से सुना और टार्च जला कर चल पडे गुफा मे। थोडी देर तक दोनो व्यक्ति बराबर प्रकाश को सीधा रखते हुए चलते गये। थोडे समय के पश्चात एक व्यक्ति के मन मे विचार उठा– क्या पता गुफा के उस पार जाने पर रत्न मिलेगे या नहीं? यदि नही मिले तो फिर पुन गुफा पार करना मुश्किल हो जाएगा। कितना अच्छा हो कि यही कहीं रत्न की खोज कर ली जाए। यही कोई रत्न मिल जाता हो तो उसे ही लेकर पुन गुफा पार कर लेना चाहिए। यह सोचकर वह अपनी टार्च का प्रकाश इधर–उधर घुमाने लगा। कभी इधर देखता तो कभी उधर। ऐसे देखने मे गुफा पार न होने से पहले ही उसका प्रकाश समाप्त हो गया। अब वह न इस पार जा सकता था न ही उस पार ही। इधर–उधर भटकता हुआ कोई दूसरी गुफा मे चला गया। रास्ता नही मिल पाने के कारण उसी गुफा मे तडप तडप करके अपना प्राणान्त कर लिया।

दूसरे को रत्नागार की प्राप्ति

दूसरा व्यक्ति जिसके हाथ मे भी टार्च का प्रकाश था वह बराबर योगी के कथनानुसार टार्च का प्रकाश इधर–उधर न घुमाते हुए सीधा सामने रख कर चल रहा था। अन्तत ज्योही टार्च का प्रकाश समाप्त हुआ त्योही गुफा भी पार हो गई। गुफा के पार होते ही देखा तो वास्तव मे मणि रत्नो का जग–मग, जग–मग करता भण्डार पडा था। उसे देखकर वह बहुत खुश होता हुआ जितना उठा सका, उतने रत्नो को एकत्र कर पुन उसी गुफा से सुरक्षित रूप मे योगी के पास पहुँच गया। योगी को प्रणाम कर रत्नो का ढेर उसके सामने कर दिया।

बहुत देर तक इन्तजार करने पर भी जब उसका सहयात्री नही आया तो उसने योगी से पूछा, योगी प्रवर ! मेरा साथी जिसने मेरे साथ ही गुफा मे प्रवेश किया था वह अब तक क्यो नही आया ? योगी ने अपने योगनिष्ठ साधना के बल पर जानकर बतलाया कि तुम्हारे साथी ने मेरी बात पर विश्वास नही किया। अब वह कभी नहीं आ सकता। उसने टार्च के प्रकाश को इधर–उधर घुमाया था अत वह प्रकाश मध्य मे ही समाप्त हो चुका था जिसके कारण वह किसी दूसरी गुफा मे चला गया है। वही रास्ता न मिलने के कारण छटपटाहट के साथ खत्म हो चुका है। योगी की बात सुनकर वह व्यक्ति उदास होकर रत्नो के ढेर को एकत्र कर अपने गतव्य स्थान की ओर चला गया।

दृष्टांत और दृष्टान्तिक

बन्धुओ ! यह तो रूपक है। यह मनुष्य जीवन, टार्च के समान है। इसमे इन्द्रियो के माध्यम से आने वाले प्रकाश को आत्म जागरण की सही दिशा मे नियोजित करना चाहिये। यदि एक ही लक्ष्य के साथ अविराम रूप से उस ही दिशा मे गति करते जाये तो आत्म जागरण अर्थात् परमात्म रूप प्राप्त हो सकता है। योगी ने तो

उन्हे भौतिक धन का पथ बतलाया था। वह धन अधिक टिकने वाला नहीं है। एक–न–एक दिन समाप्त हो ही जाएगा। सोना, चादी, माता–पिता, परिवार कोई भी मृत्यु से तुम्हारी रक्षा करने मे समर्थ नही है।

यहॉ पर आपको अध्यात्म का पथ बतलाने वाले सत/महासतियो का सयोग मिला है। जिस आध्यात्मिक श्रेय पथ पर चलकर आत्मा अपनी शक्ति का परिपूर्ण जागरण कर सकती है। आवश्यकता है आत्मिक टार्च से इन्द्रियो द्वारा आने वाले प्रकाश को सही दिशा मे नियोजित करे।

अभी आप कई भाई–बहिन सामायिक मे बैठे हें ओर व्याख्यान श्रवण कर रहे है, इस समय आप की टार्च श्रेय मार्ग की ओर चल रही है। जब घर पर चले जाते हैं, राग–द्वेष के प्रपच मे पड जाते हैं तो आपकी वही शक्ति प्रेय मार्ग की ओर लग जाती हे।

आत्मा को परिपूर्ण करने के लिये निश्चय ही आत्मिक टार्च को श्रेय मार्ग की ओर नियोजित करना होगा। □□

समीक्षा भूगोल-खगोल की

- ❖ अन्त खोजी आत्मसाधक
- ❖ एकाग्रता एकान्त मे
- ❖ भूगोल–खगोल का नियता आत्मा
- ❖ शक्ति सम्पन्न आत्मा कर्माच्छादित
- ❖ भूगोल–खगोल का विज्ञान आवश्यक नही
- ❖ भूगोल–खगोल का वर्णन मुख्य नही
- ❖ उस समय की व्याख्या और आज की
- ❖ भूगोल–खगोल मे न उलझे
- ❖ अध्यात्म साधक ब्रह्मचर्यधारी बने
- ❖ आगमानुकूल उपदेश हो
- ❖ भूगोल–खगोल का नही, अपना समीक्षण करो

धणेण किं धम्म धुरा हिगारे।

–उत्तराध्ययन सूत्र 14/17

धर्म की धुरा के खीचने के लिए धन की क्या आवश्यकता है। धर्म का आचरण मुख्यतया आत्मा से सबधित है। बाह्य तत्वो से मुख्य रूप से नही, बाह्य तत्व चाहे धन सम्पत्ति हो या भूगोल–खगोल। आत्मा की परिपूर्णता का ज्ञान धर्माचरण से ही हो सकता है। भूगोल–खगोल का ज्ञान मुख्य नही है।

अध्यात्म मे भूगोल–खगोल का वर्णन आनुसगिक रूप से है। साधक को मुख्य वर्णन की ओर ही अधिक ध्यान देना अभीष्ट रहता है।

आज के भूगोल–खगोल और शास्त्रीय भूगोल–खगोल मे परिलक्षित अन्तर शास्त्रीय विषय को सदेहास्पद नही बना सकता है, क्योकि शास्त्र वाणी प्रभु की अवितथ/असदिग्ध भाषा है।

श्री श्रेयास जिन अन्तरयामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम पद पूरण पामी, सहज मुगति गति गामी रे।।

बन्धुओ ! श्रेयास नाथ प्रभु की स्तुति प्रसग से भावात्मक रूप आपके समक्ष रखने का प्रसग है।

अन्तः खोजी आत्मसाधक

उन सर्वज्ञ सर्वदृष्टा पवित्र महापुरूषो की ही देन है कि आज भव्य जीवो को दुनिया मे कहीं नही मिलने वाली आत्म–जागरण की अनिर्वचनीय उपदेशधारा श्रवण करने को मिल रही है। ससार को कोई भी बडे से बडा वैज्ञानिक कितनी भी खोज करले तथापि उसकी खोज अपूर्ण और बाह्य तत्वो से ही सम्बधित होगी। आज का भौतिकता मे उलझा वैज्ञानिक चर्म चक्षुओ से दृष्ट पदार्थो की ही अन्वेषणा कर सकता है, अतरग के सूक्ष्म तत्त्वो की नही।

अन्तरग की खोज तो आत्मखोजी साधक ही समीक्षण दृष्टि के माध्यम से कर सकता है। इस अतरग की खोज करने के लिये ही तीर्थंकर देव गृहस्थाश्रम का त्याग कर, सराग से विरागी बन कर प्रमत्त से अप्रमत्त साधन की ओर गतिशील बने। क्योकि वे यह जानते थे कि राजमहल मे ही बैठे रहने से आध्यात्मिक जीवन की परिपूर्ण उपलब्धि नही हो सकती ।

एकाग्रता एकान्त में

कितना कुछ भी प्रयत्न किया, यदि स्थान ही नही है तो नर्तकी नाच नही सकती है। ठीक इसी प्रकार आत्मा को गृहस्थ जीवन मे रह कर घर के वायुमडल मे, बाल–बच्चो की चहल–पहल, परिवार के सदस्यो के कोलाहल से अपने आपको परिपूर्णत अलिप्त रख पाना बहुत मुश्किल है। ऐसी स्थिति मे मन एकाग्र नहीं रह पाता

और मन की एकाग्रता के बिना अन्त समीक्षण नहीं हो सकता और अन्त समीक्षण के बिना शाति की उपलब्धि नहीं हो सकती। क्योकि जब तक अन्तरग जीवन का सही रूप से सशोधन नहीं होता, तब तक बाह्य जीवन को कितना ही सजाया सवारा जाए, एक न एक दिन अन्तरग के उभार से बाह्य सजावट नष्ट हो जाती है। बिना नींव के मकान टिक ही नही सकता। मकान को टिकाने के लिये नींव की आवश्यकता है। वैसे ही शाति रूप महल को टिकाये रखने के लिये अन्तरग मे स्थित विभावो के समीक्षण–सशोधन की परम आवश्यकता है।

भूगोल–खगोल की नियंता आत्मा

तीर्थकर देव यह अच्छी तरह जानते थे कि भूगोल और खगोल का थोडा बहुत विज्ञान तो मानव भौतिकी अन्वेषणाओ से प्राप्त कर सकता है परन्तु अपने आपके अन्तरग जीवन का स्वरूप अर्थात् आध्यात्मिक जीवन को वह बाह्य अन्वेषणाओ से प्राप्त नहीं कर सकता। इसी दृष्टिकोण से प्रभु ने अपनी देशनाओ मे मुख्यत आत्मा को ही आधार बनाया है। वास्तव मे आत्मा ही तो सभी तत्त्वो मे प्रधान एव नियता तत्त्व है। भूगोल और खगोल की व्यवस्थाओ का व्यवस्थापक भी आत्मा ही तो है। सचालन, नियमन, सरक्षण, सवर्धन मे आत्मा मुख्य रूप से कार्यकारी होती है।

शक्ति सम्पन्न आत्मा कर्माच्छादित

ऐसी विकासशील आत्मा को कर्मो के अनादिकालीन सबध ने ही विकृत बना रखा है। शास्त्रकारो ने कर्म सबध मे बहुत गहन–गभीर एव तलस्पर्शी विवेचना दी है। कर्मो का बधन कैसे होता है? कैसे इसका भुगतान होता है? आत्मा को कर्म से किस प्रकार अपुनर्भाव से विलग किया जा सकता है? एतद् विषयक विस्तार से स्पष्टीकरण मिलता है। क्योकि आत्मा की मौलिक शक्ति को दबाने वाला मूलभूत शत्रु कर्म ही तो है।

भूगोल-खगोल का विज्ञान आवश्यक नहीं

भूगोल और खगोल का विज्ञान आत्म–जागरण के लिये कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है। भूगोल–खगोल के विशेष विज्ञान के बिना भी आत्मा अपनी चरम गति एव परम साधना कर सकती है। शास्त्रो मे इसलिये भूगोल एव खगोल विषयक वर्णन विस्तार से प्राप्त नहीं होता। जिन आगमो मे भूगोल–खगोल सबधित वर्णन है भी सही तो इसके वर्णन को किस प्रकार समझा जाए। एतद् विषयक कुजी वर्तमान मे उपलब्ध नहीवत् है। यही कारण है कि आजकल आधुनिक युग के प्रवाह मे बहने वाले कई भाई भौतिक विज्ञान से सबधित भूगोल और का आगमवर्णित भूगोल–खगोल के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने लगते हैं और जब उन्हे आगम वर्णित भूगोल–खगोल का यथार्थ विज्ञान नही हो पाता तो वे अन्यथा सोच बैठते है।

भूगोल-खगोल का वर्णन मुख्य नहीं

लेकिन चिन्तनीय विषय यह है कि भगवान् का मुख्य उद्देश्य भूगोल ओर खगोल का वर्णन नही रहा है। प्रभु का मुख्य उंद्देश्य अध्यात्म प्रधान होने से आत्मा की उन्नति कैसे हो इसी से सबधित रहा है। इसी वर्णित मे प्रसगोपात कही–कहीं भूगोल और खगोल का वर्णन आया है। इसी वर्णन मे से भी कितना ही भाग बारह वर्ष के दुष्काल के समय मे तथा मध्यवर्ती शताब्दियो मे विलुप्त हो गया। ऐसी स्थिति मे अवशेष विद्यमान भूगोल और खगोल के वर्णन मे पूर्वापर का अनुसन्धान न होने से आगमिक दृष्टि से इनका सागोपान विवेचन नही किया जा सकता। इतने मात्र से यह विचार करना सर्वथा अनुपयुक्त है कि भूगोल–खगोल का आगमिक वर्णन वैज्ञानिक कसौटी से सिद्ध नही होने के कारण मानने मे नही आता।

उस समय की व्याख्या और आज की

एक बात और यह है कि उस समय की भौगोलिक एव

खगोल सम्बन्धी व्याख्या मे तथा आज की व्याख्या मे बहुत अन्तर आ चुका है। आज की गणित विधि अलग है और प्राचीन काल की विधि अलग थी। नाप–तोल के परिमाण मे भी परिवर्तन आया। यह तो बहुत अतीत की बात है, किन्तु इस युग मे भी कई वस्तुओ–क्षेत्रो के परिमाणो मे परिवर्तन देख सकते है।

कुछ समय पहले क्षेत्र–परिमाण मे कोस का प्रचलन था, बाद मे मीलो का प्रचलन हुआ। मील से कोस का अनुमान लगाया जाने लगा। दो मीलो का एक कोस जाना जाने लगा। परन्तु इस परिमाण मे भी अन्तर आ गया। जब मै मध्यप्रदेश विहार मे धमतरी से रायपुर पहुँच रहा था, उसी बीच मैने एक गॉव मे पूछा कि रायपुर कितनी दूर है? भाई ने कहा पॉच कोस। मुझे आश्चर्य हुआ। क्षेत्र की दूरी मे सदेह था। अत सतो से कहा कि एक–दो व्यक्तियो को और पुछो। तब सतो ने दूसरे भाई से पूछा– रायपुर कितनी दूर है? तो उस भाई ने भी यही कहा कि पॉच कोस है। इसी बीच मैंने पूछ लिया – क्या पॉच कोस अर्थात दस माइल? तो भाई ने कहा– नही महाराज, दस नही पन्द्रह माइल है।

मैने कहा– कैसे? एक कोस तो दो माइल का होता है, इस अनुसार पॉच कोस तो दस माईल हुए। तब भाई ने कहा– नही महाराज श्री, यहॉ पर एक कोस से तीन माइल लिया जाता है। तदनुसार पॉच कोस से पन्द्रह माइल होते है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस कोस को राजस्थान आदि प्रान्तो मे दो मील का माना जाता है उस कोस को प्रान्त परिवर्तन से रायपुर की तरफ तीन माइल का माना गया और उसी कोस को पजाब की तरफ डेढ माइल माना जाता है यह तो मैंने एक–दो प्रात की बात बताई। लेकिन अन्यान्य क्षेत्रो का अध्ययन किया जाए तो आपको कितनी ही भिन्नता परिलक्षित होगी। अब तो किलोमीटर का ही अधिक प्रचलन है। अत समय के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

यह तो क्षेत्र–परिणाम बतलाया। इसी प्रकार तोलने के माप

मे भी भिन्नता आ चुकी है। तोलने के साधन को पहले बाट, सेर, मन बोलते थे और अब आ गया किलो। यह तो सब समय–समय पर बदलते जाते हैं। जब आपके सामने–सामने ही इतना परिवर्तन हो जाता है तो आप विचार करिये कि अढाई हजार वर्ष पूर्व जो नाप–तोल, गणित आदि की व्याख्या थी और आज के युग मे उनमे कितना परिर्वतन आ चुका होगा।

अब वर्तमान युग मे हमे गणित को समझने की कुँजी पूर्णत न मिल पाए तो हम निर्णयात्मक रूप से कुछ नही कह सकते। परन्तु भगवान् महावीर ने जो कुछ भी कहा वह असदिग्ध सत्य है।

भूगोल-खगोल में न उलझें

आध्यात्मिक साधना करने वाले साधक का भूगोल–खगोल की वार्ता मे उलझ कर मुक्त रूप से आत्म–साधना के विषय मे प्रगति करनी चाहिये। आप सभी आत्मिक साधना की ओर सन्मुख बने। यह साधना यथाशक्य गृहस्थ एव साधु जीवन दोनो मे ही की जा सकती है। अध्यात्म का सही चिन्तन करने वाले वस्तु स्वरूप का सही चिन्तन कर सकेगे। साथ ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त को दुनिया के सामने रख सकेगे अर्थात् आध्यात्मिकता की साधना किस मे है? और भौतिकता की साधना किस मे। कर्तव्य क्या है? और कर्तव्यहीनता क्या है? लेकिन जो साधक आध्यात्मिक साधनापथ से च्युत हो जाते हैं, व स्त्री कथा, भक्त कथा, राज कथा, देश कथा आदि कथा मे रमण करने लगते है। ऐसे साधक आध्यात्मिकता को छू भी नही सकते। जो स्त्रियो के लावण्य और विकारी अगो का वैकारिक भावना के साथ वर्णन करते हैं, इसी तरह अन्य भक्त कथा आदि कथाएँ करते हैं, वे कभी भी आध्यात्मिक साधना नही कर सकते। ऐसे साधक अपना भी पतन कर लेते है और अन्य का भी। हॉ आध्यात्मिकता के वर्णन मे प्रासगिक रूप से यदि अन्य वर्णन आ जाता है तो वह भी निर्विकारिक भावना से किया गया यथातथ्य वर्णन आध्यात्मिकत्ता का ही पोषक होता है। लेकिन जो वैकारिक भावना से कथा का वर्णन करते हैं वे

बाह्य रूप से आध्यात्मिक वेश को धारण करने पर भी ससारी ही हैं।

अध्यात्म साधक ब्रह्मचर्यधारी बने

साधक के लिये ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए नववाड प्रतिपादित है। खेत की सुरक्षा के लिए किसान एक बाड ही पर्याप्त मानता है किन्तु ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए प्रभु ने एक नहीं, दो नही नववाडो का वर्णन किया है। उन नववाडो मे एक यह भी बाड आई है कि ब्रह्मचारी व्यक्ति किसी भी स्त्री के अगोपागो को वैकारिक दृष्टि से नही देखे। यदि देखता है तो कच्ची ऑख को सूर्य का दृष्टात अर्थात् जिस प्रकार किसी नवजात शिशु की ऑख के समक्ष यदि सूर्य का प्रचण्ड प्रकाश आ जाए यानी वह बालक अपनी ऑख से सूर्य को देख लेता है तो सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश से उसकी ऑख का उपघात हो जाता है और वह नष्ट तक हो जाती है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्मचारी व्यक्ति द्वारा बुरी ऑखो से स्त्री को देखे जाने पर उसकी ऑखो का ही नही, उसके जीवन का उपघात होता है।

साधक को सदा पौद्गलिक परिवर्तन का विचार करते हुए पुद्गलासक्ति से सदा दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिये। स्त्री के शरीर के भीतर क्या भरा पडा है? मॉस–पित्त, कफ की क्या स्थिति है? आदि का चिन्तन करने से साधक की आध्यात्मिक भावना मे प्रगति होती है।

आध्यात्मिक साधना मे अशत चलने वाले गृहस्थ को भी अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य के साथ माता एव बहिन का व्यवहार रखना चाहिये। इस प्रकार की देशत शुद्धि भी जीवन के लिए वरदान बन जाती है। सेठ सुदर्शन गृहस्थ, श्रमणोपासक था। देश से व्रती था। जव अभया रानी की कामुक चेष्टाऍ उसके सामने आने लगी तो भी वह अपने पथ से च्युत नहीं हुआ था।

रानी अभया की क्रोधाग्नि भडक उठी । उसने राजा से गलत–सलत भिडाकर सेठ सुदर्शन को फॉसी का हुक्म दिलवा

दिया। इतने पर भी सुदर्शन श्रमणोपासक नही घबराया। उसकी आध्यात्मिक साधना धैर्य के साथ अविचल रूप से चलती रही। फॉसी के तख्ते पर पहुँचने तक विचारो मे कोई परिवर्तन नही आया। आखिर हुआ क्या ? आध्यात्मिक साधना का चामत्कारिक प्रभाव– शूली का सिहासन हो गया। जनता आश्चर्यचकित हो गई। आध्यात्मिक साधना का अशत प्रभाव ही जनता मे सुखद आश्चर्य पैदा करने वाला हो गया।

किसी कवि ने कहा है–

सुदर्शन और सीताजी ने फेरी थी यह माला,
सूली का सिहासन हो गया शीतल हो गई ज्वाला
शील जिसने पाला सच्चा है रखवाला।। फेरो ।।

यह है अध्यात्म साधना का प्रभाव।

आगमानुकूल उपदेश हो

सर्वत्यागी साधु को स्वत्व की आराधना के साथ अन्यो को भी आध्यात्मिक साधना का ही उपदेश देना चाहिये।

जो आध्यात्मिक साधना के मध्य भूगोल और खगोल का वर्णन आता है, वह प्रासगिक है, लक्ष्य नही है। जिस प्रकार मकान के वर्णन मे आस पास के पडोसियो एव सडक आदि का भी प्रासगिक वर्णन आता है लेकिन वर्णन मे मुख्यतया मकान की व्याख्या का ही उद्देश्य रहा होता है, भूगोल–खगोल का नहीं।

भूगोल–खगोल का नहीं अपना समीक्षण करो

भूगोल–खगोल का मुख्य रूप से वर्णन न होने से इसकी विवेचना भी सागोपाग नही है। लेकिन अध्यात्म साधक को इसमे नहीं उलझना चाहिये। उसे अन्त समीक्षण मे ही विशेष ध्यान रखना चाहिये।

शास्त्रकार ने यह स्पष्ट कहा है–

धणेण किं धम्म धुरा हिगारे ।

धर्म की धुरा को खींचने के लिए धन की क्या आवश्यकता है। धन ही क्या इन बाह्य वस्तुओ मे से किसी की भी मुख्य आवश्यकता नही रहती। जिस दिशा मे व्यक्ति बढता है उसी दिशा मे ज्ञान उसके लिए मुख्य रूप से आवश्यक है। जाना चाहे पूर्व की ओर और पश्चिम का ज्ञान करे तो वह योग्य नही है। इसी प्रकार साधक को आत्मन की दिशा मे बढना है तो भूगोल–खगोल आदि अन्यान्य वस्तुओ का ज्ञान मुख्य रूप से आवश्यक नहीं है। इसके लिए सबसे पहले आत्मिक ज्ञान आवश्यक है। जब तक अपने आपके जीवन का शोधन नही होगा तब तक बाह्य विज्ञान केवल मस्तिष्कीय कसरत ही रह जाएगा। ऐसा विज्ञान एक बार नहीं अनेक बार कह चुके होगे, लेकिन इससे शाश्वत शाति प्राप्त होने वाली नही है। शाश्वत शाति की प्राप्ति के लिए श्रेयास प्रभु की स्तुति मे स्पष्ट रूप से बतलाया गया है कि अन्तर्यामी की स्थिति अध्यात्म साधना से ही सभावित है। □□

अहिंसक देश में घोर हिंसा

(अण्डा शाकाहारी नहीं है)

- वासुपूज्य जिन त्रिभूवन स्वामी
- भीतरी शत्रुओ से बाहरी शत्रुओ की प्रबलता
- हिसक नहीं अहिसक बनो
- महत्त्व छद्मस्थ की वाणी का नहीं
- भारतीय सस्कृति और सभी धर्मसम्मत अहिसा
- अहिसा और अतीत का इतिहास
- फैशन के पीछे घोर हिसा
- मूक पशुओ की हिसा कहाँ का न्याय?
- अण्डा शाकाहारी नहीं है
- अण्डा मासाहारी है सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से
- अण्डा–आहार नरक–गमन का हेतु
- वैज्ञानिक–अभिमत सभी सत्य नहीं होते
- अण्डा मासाहार है वैज्ञानिक दृष्टि से भी
- जागृत हो जाइये

- **सव्वेसिं जीवियं पियं**

आचाराग सूत्र 1/2/3

सभी प्राणियो को जीवन प्रिय है।

- **आय तुले पयासु**

सूत्रकृताग सूत्र 1/11/3

विश्व के समस्त प्राणियो के प्रति आत्म तुल्य भाव रखो।

- **एवं खु नानिर्णो सारं जं न हिंसई किंवणं।**

सूत्रकृताग सूत्र 1/11/1

ज्ञानियो का वही सार है जो किसी भी प्राणी की हिसा नहीं करते है।

❖ **मेत्ति भुएसु कप्पए**

उत्तराध्यन सूत्र 6/2

सभी जीवो पर मैत्री भाव रखना चाहिए।

❖ **सव्व जीव रक्खण दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं**

प्रश्न व्याकरण

सभी जीवो की रक्षा के लिए भगवान ने प्रवचन प्रवचित किया।

समीक्षण दृष्टि ही अहिसा की मूल नीति है।

❖

वर्तमान समय मे अण्डे का व्यापक प्रचार–प्रसार हो रहा है। शारीरिक सयोग बिना होने वाले अण्डे को "शाकाहारी अण्डा" के नाम से प्रचारित किया जा रहा है। यही नही, चित्रो मे अण्डे को वनस्पति फल बताने के लिए वृक्षो पर दिखलाया जा रहा है।

ऐसे युग मे यदि मानव समाज जागृत नही हुआ तो निकट भविष्य मे ही अण्डे को शाकाहारी मान्यता भी प्राप्त हो सकती है। अण्डा मासाहार है, आगमिक, वैज्ञानिक एव सयुक्तिक रूप से स्पष्ट है। अण्डाहार आत्मिक जीवन को क्षतविक्षत करने के साथ ही शारीरिक एव मानसिक जीवन को नष्ट करने वाला है। हिसा का नग्न रूप उपस्थित करने वाला है।

मानव समाज, 'अण्डा मॉसाहार नही है' इसके विरोध मे अपनी–अपनी मर्यादा मे रहते हुये दृढ सकल्प के साथ अविरल रूप से बढेगा तो अवश्य ही सुखद क्रातिकारी परिवर्तन घटित होगा।

वासुपूज्य जिन त्रिभूवन स्वामी, घन नामी पर नामी रे।
निराकार साकार सचेतन, कर्म–कर्म फल कामी रे।।

आज चौबीस तीर्थकरो मे से बारहवे तीर्थकर वासुपूज्य भगवान की स्तुति का प्रसग आया है। आध्यात्मिक विषय का परिपूर्ण प्रकटीकरण तीर्थकर देव करते हैं। उसी आध्यात्मिक बात को सन्मुख रखते हुए, वासुपूज्य जी की स्तुति के प्रसग मे कवि ने त्रिभुवन स्वामित्व शुद्ध चैतन्यत्व परिणामित्व, रागादि शत्रुओ पर विजेतृत्व, निराकार, आकार उपयोगत्व तथा कर्म कर्मफलकामित्व गुणो को स्पष्ट किया है।

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी

आत्मा जब अनन्त–अनन्त जन्मो से सबद्ध राग द्वेष की वैकारिक भावनाओ पर अपुनर्भाव से विजय प्राप्त कर लेती है, अपने शुद्ध चैतन्यत्व पर अपना अधिपत्य जमा लेती है, जिस आधिपत्य को हटाने की शक्ति ससार के किसी भी व्यक्ति मे न हो तब आत्मा त्रिभुवन स्वामी के रूप मे उद्भासित होती है। साधारण जनता त्रिभुवन स्वामी से यह अर्थ ले लेती है कि समग्र विश्व पर जो नियत्रण रखे वही त्रिभुवन का स्वामी बन सकता है और इसी दृष्टि से उनके मन मे वासुपूज्य भगवान के लिए लगे त्रिभुवन स्वामी रूप के विशेषण से यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या भगवान् सारे विश्व के नियन्ता सचालक थे? दूसरा प्रश्न यह भी उठ सकता है, भगवान त्रिभुवन के नियन्ता कैसे बने? क्योकि चक्रवर्ती सम्राट के भी जब चक्रवर्तित्व पद का उदयकाल आता है तब वे छ खण्ड की साधना के लिए चल पडते हैं। कई स्थलो पर उनको युद्ध करने पडते हैं, कई गुफाओ का उद्घाटन करने के लिए देवो को बुलाना पडता हे और देवो द्वारा द्वारो को उद्घाटित करवाया जाता है। यानी अथक परिश्रम एव युद्धादि के द्वारा चक्रवर्ती छ खण्ड पर आधिपत्य जमा पाता है तो तीर्थकर भगवान को सम्पूर्ण विश्व पर आधिपत्य जमाने के लिए भी ऐसा ही करना पडा या अन्य कोई ? ऐसे एक नही अनेक प्रश्न उभर आते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चिन्तन करने पर इन प्रश्नो का सही

समाधाना ज्ञात हो सकेगा। प्रभु त्रिभुवन के स्वामी बने थे, पर बाह्य हिसात्मक सघर्ष से नहीं। प्रभु त्रिभुवन के स्वामी बने, पर नियन्ता नहीं। प्रभु ने बाहरी शत्रुओ से सघर्ष कर भीतरी काम, क्रोध, मद, मोह, विषय–कषाय आदि शत्रुओ से सघर्ष किया था और उन पर विजय प्राप्त की। इसलिए वे अरिहत कहलाए। अरि यानी शत्रु (काम,क्रोधादि) हत यानी नाशी, शत्रुओ का नाश करने वाले अरिहत होते हैं।

भीतरी शत्रुओं से बाहरी शत्रुओं की प्रबलता

भीतरी शत्रुओ के प्रबल बनने पर ही बाहरी शत्रु प्रबल बनते हैं। यदि भीतरी शत्रु क्षीण हो जायेगे तो आपको कोई भी बाहरी शत्रु नही मिलेगा। तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य स्वय विकृत बनता है, राग–द्वेष की परिणितियो के साथ प्रवृति करने लगता है, तब उसके बाहरी शत्रुओ का भी एक बहुत बडा घेरा तैयार हो जाता है। यदि साधक के कषायो की समाप्ति हो जाए, लोभ सर्वथा क्षीण हो जाए तो उसका कोई भी शत्रु नहीं रहता। शास्त्रकारो ने स्पष्ट कहा है "लोहो सव्व विणासणो" लोभ सभी सद्‌गुणो का विनाश करने वाला है। लोभोदय से सभी बाहरी शत्रु खडे हो जाते है। जिसमे लोभ नहीं है, उसके सभी गुणो का रक्षण हो सकता है। प्रभु ने पॉच इन्द्रियॉ और मन जो भीतरी शत्रु हैं, उन पर विजय पा ली थी, उन्हे अपने नियत्रण मे कर लिया था। इनके नियत्रित होने से सबधित बाहरी शत्रुओ पर भी सहज ही नियत्रण हो गया। इस नियत्रण से उनके भी केवलज्ञान, केवल दर्शन की ज्योति जगमगा उठी। सारे विश्व मे ऊर्ध्वलोक, अध लोक, मध्यलोक मे कहॉ क्या हो रहा है, इसका सारा विज्ञान उन्हे हस्तामलकवत् एक ही क्षण मे स्पष्ट रूप से होने लगा था। उनके इस ज्ञान को नष्ट करने की शक्ति विश्व की किसी भी शक्ति मे नहीं थी, अत वे त्रिभुवन के स्वामी बन गए।

हिंसक नहीं अहिंसक बनो

परिपूर्ण ज्ञानी होने पर प्रभु ने भव्यात्माओ को आदेश दिया–

जिस प्रकार तुम जीवित रहना चाहते हो, वैसे ही विश्व के सभी प्राणी जीवित रहना चाहते है।

"सव्वेसि जीविय पिय"

व्यक्ति अनियत्रित होकर अपने स्वार्थ के लिए पचेन्द्रिय प्राणियो तक का घात कर उठता है। ऐसा व्यक्ति महारभी तथा स्व का अध पतन करने वाला होता है।

श्रावक तो महापापी की श्रेणी मे नहीं आते। उनके लिए विशेषण आया है "अल्पारभी अल्पपरिग्रही" वे पाप करके जीवो को मारने की भावना वाले नहीं होते। परिस्थितिवश प्राणी मर जाते हैं, यह अलग बात है। श्रावक यह विवेक रखता है कि कौन सा जीव पचेन्द्रिय है और कौन सा एकेन्द्रिय ? कौन सा त्रस है और कौन सा स्थावर ? श्रावक के लिए जीवादि नव तत्वो का ज्ञाता होना कहा गया है।

महत्त्व छद्मस्थ की वाणी का नहीं

जब श्रावक शास्त्रो का अध्ययन करने लग जाता हे, तब उसके मन मे तीर्थंकर देव के प्रति श्रद्धा जमने लगती है। वह सोचने लगता है कि यह परिपूर्ण पुरूष की वाणी है। जब वीतराग वाणी पर दृढतम आस्था जागृत हो जाती है, तब छद्मस्थ की स्खलित वाणी के प्रति श्रद्धावनत नही होता है। छद्मस्थ की मनकल्पित वाणी तीर्थंकर की वाणी की तरह सचोट सत्य नहीं कही जा सकती।

ऐसे श्रद्धाशील व्यक्ति की मति–हस–चोच की तरह विवेकशील बन जाती है। जिस प्रकार दुग्ध मिले पानी मे हस–चोच के जाने से दुग्ध अलग हो जाता है व पानी अलग हो जाता है उसी प्रकार सर्वज्ञ के नाम पर कही गई छद्मस्थ की वाणी का विभागीकरण, सत्य का स्पष्टीकरण शास्त्र विज्ञाता व्यक्ति कर लेते हैं।

भारतीय संस्कृति और सभी धर्मसम्मत अहिंसा

आज भारतीय सस्कृति किधर जा रही हे? त्यागी, वेरागी,

महायोगी जहॉ तप–सयम की आराधना करते हैं, जहा अहिसा का बहुत बडा प्रचार है। जैनी ही नही प्रत्येक हिन्दु मे किसी न किसी प्रकार से अहिसा की भावना समाई हुई है। कोई भी हिन्दु हो, चाहे किसी भी धर्म का अनुयायी हो, जल्दी से जान बूझकर बिना कारण निर्दयता के साथ किसी भी प्राणी की हिसा करने के लिए तत्पर नही होगा।

अहिसा के विषय मे कहॉ क्या कहा गया है यह बतलाना भी अप्रासगिक नही होगा।

ऋग्वेद मे कहा है–

यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः।
स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः।।

जो व्यक्ति किसी को राक्षस भाव से नष्ट करना चाहता है वह स्वय अपने द्वारा किये गये पापो द्वारा ही खत्म हो जाता है।

यजुर्वेद मे कहा है–

माँ हिंसी स्तन्वा प्रजाः

तुम अपने शरीर से किसी को भी पीडित मत करो अर्थात् सबके साथ आत्मीय व्यवहार रखो।

अथर्ववेद मे कहा है– **कविर्देवो न दभायत स्वधावन्, मूर्णा मृगस्यः दन्ताः।**

जो कान्तदर्शी होता है वह ऐश्वर्यशाली होकर किसी भी प्राणी को पीडित नहीं करता ।

हिसाकारी व्याघ्र आदि के दॉत मूढ हो जाए, खाने मे असमर्थ हो जाए अर्थात अत्याचारी लोगो की शक्ति नष्ट हो जाए।

आदि पर्व मे कहा है–

अहिंसा परमो धर्मः सर्व प्राण मृतां वरं।

सभी प्राणियो के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म अहिसा है।

वेशेषिक दर्शन मे बताया है–

दुष्ट हिंसायाम।

हिसा करने वाला अच्छे से अच्छा साधक भी दुष्ट असाधक हो जाता है।

श्रीमद्भागवत मे भी बतलाया है–

स्वर्ग सत्व गुणोदय. नरकस्तम उन्वाह.।

सत्व गुण–अहिसा की वृद्धि यथार्थ स्वर्ग है। तमोगुण हिसा ही नरक है।

ईसा मसीह ने भी अपनी दस आज्ञाओ मे पॉचवी आज्ञा मे कहा हे–"किसी भी प्राणी की हिसा मत करो।" "Thou shalt not kill" आगे और भी कहा ''मेरे शिष्यो, तुम रक्त बहाना छोड दो, और अपने मुँह मे मॉस मत डालो। ईश्वर बडा दयालु है, इसकी आज्ञा है कि मनुष्य पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले फल ओर अन्न से जीवन निर्वाह करे।'' सेण्ट ल्यूकस लिखते हैं– कि सभी प्राणियो पर दया करो। "Be kind to all creatures "

स्वामी दयानन्द ने कहा हे– "मॉस का प्रचार करने वाले सभी राक्षस हैं।"

गुरु नानक ने भी स्पष्ट शब्दो मे कहा है– "मास खाने वाले सभी राक्षस हैं।"

मुस्लिम समाज, जहॉ वर्तमान मे मॉस का अधिक प्रचार है, उसके कुरान का आदि वाक्य है ''बिस्मिल्लाह निर्रहमान निर्रहीम'' इसी प्रकार कुरानशरीफ मे सराहन जिकर हज मे भी स्पष्ट लिखा है– "अल्लाह खून और गोश्त को पसन्द नहीं करता।"

कहने का तात्पर्य यह है कि मुस्लिम धर्म मे भी दीन हीन

प्राणियो के रक्षण के लिए जोर दिया है। यह सब तो मैंने अन्य धर्मों के विषय मे बताया।

श्रमण सस्कृति जो वीतराग तीर्थंकर देवो की देन है, वहॉ तो अहिसा की बहुत ही सूक्ष्म विवेचना मिलती है। उन सबको नहीं बतला रहा हूँ तथापित दो चार प्रमाण तो रख ही दूँ।

आचाराग सूत्र मे कहा है–

सव्वेसिं जीवियं पियं।

सभी प्राणी जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता है। सूत्रकृताग सूत्र मे कहा है–

आय तुले पयासु।

प्राणियो के प्रति आत्म तुल्य भाव रखो।

एवं खु नाणिनो सारं जम न हिंसई किंचण।

ज्ञानियो का वही सार है जो किसी भी प्राणी की हिसा नहीं करते हैं।

उत्तराध्ययन मे बताया गया है–

मेत्तिभुएसु कप्पए।

सभी जीवो पर मैत्री भाव रखना चाहिए।

इस प्रकार एक स्थान पर ही नही, दो स्थानो पर ही नही जगह–जगह पर प्रभु ने अहिसा की व्यापक, विस्तृत एव सूक्ष्म विवेचना की है। और तो और आगम विवेचना जीवो की रक्षा के उद्देश्य से ही की गई है जैसा कि प्रश्न–व्याकरण सूत्र मे बतलाया गया है।

"सव्व जीव रक्खण दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं"

सम्पूर्ण जीवो की रक्षा के लिए भगवान की प्रवचन–देशना

प्रवचित हे। प्रभु का सारा जीवन अहिसामय था। उनके रग—रग मे अनुकम्पा की भावना समाई हुई थी। छोटे से छोटे जीव की हिसा करना भी उन्हे अभीष्ट नही था। प्रभु ने पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति मे भी जीवत्व देखा है ओर परिपूर्ण साधक के लिए उनकी रक्षा करना भी अनिवार्य बतलाया है।

अहिंसा और अतीत का इतिहास

इस प्रकार सर्वत्र सभी दर्शनो, धर्मो, पथो मे, अहिसा का तुमुल शखनाद जहॉ होता है, जिस भारतीय सस्कृति मे अहिसा के सस्कार आनुवाशिक रूप से चले आ रहे है। जिसका इतिहास अहिसा की भावना से ओतप्रोत रहा हे। उसी देश मे स्वार्थलिप्सु व्यक्ति किस प्रकार हिसा का ताण्डव रूप उपस्थित कर रहे हैं। कहॉ गया वह शौर्य—जहॉ राजा मेघरथ (शिवि) ने एक कबूतर की रक्षा के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। नेमिनाथ भगवान ने पशुओ की रक्षा के लिए शादी से मुख मोड लिया। आज उनके अनुयायी किधर जा रहे हें? अगर अपनी आवाज को बुलन्द नही की तो भारतीय सस्कृति का अहिसात्मक रूप नष्ट होता चला जाएगा।

फैशन के पीछे घोर हिंसा

आज भारत मे अण्डे को तो शाकाहारी बताकर उसका तो गलत प्रचार किया ही जा रहा है। उसके अतिरिक्त भी न मालूम कितनी—कितनी हिसाए किस—किस रूप मे आपके फैशन के पर्दे के पीछे हो रही है, क्या कभी सोचा है आपने ? क्या कहूँ मैं, जब लोग मुझे बतलाते हैं कि आज फैशन के लिए किस प्रकार की हिसाए हो रही है तो मेरा हृदय एक गहरी सवेदना से भर जाता है। आज धार्मिक जनता को हो क्या गया है ? वह किधर जा रही है ? किस प्रवाह मे बह रही है ? कहॉ चली गई उसकी अहिसक भावनाऍ ? आपकी फेशन के पीछे कितनी क्या हिसा होती है। उसे आप सुनेगे तो आपके रोगटे खडे हो जाएगे।

आज के लोग जो फर के कोट बडी खुशी के साथ पहनते है, मालूम है आपको उसके पीछे कितनी घोर हिसा होती है? समुद्र के सील नामक जीव को लाठियो से मार–मार कर फर प्राप्त किये जाते हे जो बडे खूबसूरत लगते है। मरने के पहले बेहोशी की हालत मे उनकी खाल उतार ली जाती है। जैसा कि बतलाया जाता है कि छ सात बच्चो की खाल से मुश्किल से एक कोट बन पाता है। उद्‌बिलाव, भालू, खरगोश की चमडी द्वारा भी फर के कोट बनाए जाते है।

इसी प्रकार सिर को धोने के लिये बनाये जाने वाले शेम्पू का प्रयोग भी चूहो ओर खरगोश की ऑखो पर किया जाता है। परिणामस्वरूप कितने खरगोश तो अधे हो जाते है। मालूम है आपको सिवेट जानवर को पिजरे मे डालकर लकडियो से खूब तग किया जाता है। अधिक चिडचिडा होने पर वह कस्तूरी देता है। फिर कस्तूरी वाली ग्रन्थि को चीरकर कस्तूरी निकाल ली जाती हे, हर दसवे दिन यह काम किया जाता हे। खूबसूरत बेग, पर्स व जूतो को बनाने के लिये मगरमच्छ की खाल उधेडी जाती है। मगरमच्छ जिस रास्ते से जाता हे उसी रास्ते से वापस लोटता है। यह उसकी आदत होती हे। लोगो के द्वारा उसके लोटने के रास्ते पर तेज धार वाले चाकू रोप दिये जाते है। जिससे लोटते समय उसका पेट फट जाता हे ओर उसका प्राणान्त हो जाता है।

मूक पशुओं की हिंसा कहाँ का न्याय

यह तो कुछ उदाहरण मैं आपके सामने दे रहा हूँ। ऐसी अनेक विविध हिसाए आज के अहिसक मनुष्यो के लिये की जा रही है। आर्य कहलाने वालो को विचार करना है। जो एक कीडे को मारने मे भी हिचकते हैं, वहॉ आज उनकी फेशन के पीछे कितनी घोरतम हिसा की जा रही है। आज का बढता हुआ हिसात्मक प्रवाह उसे कहॉ से कहॉ तक ले जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता ? जीवन की चन्द खुशियो के लिये किसी का प्राणापहरण कर लेना, कहॉ का न्याय है ? कौनसा धर्म है ? कौनसी नैतिकता है ? जरा हृदय मे विचार कीजिए।

अण्डा शाकाहारी नहीं है

आधुनिक युग के कुछ अनुसन्धानकर्ता स्वार्थ के प्रवाह मे बहकर कुछ अन्यथा कथन भी कह डालते है। कई डॉक्टर अण्डो को सब्जी आहार मे शामिल कर उसे शाकाहारी बतलाने का व्यापक प्रचार कर रहे है। इसके पीछे राजनैतिक सत्ता भी काम कर रही है, ऐसा महसूस होता है।

स्वार्थ लिप्सा मे व्यक्ति कृत्य–अकृत्य, हिसा अहिसा आदि को भूल कर अकरणीय को करने मे भी नही हिचकता हे। आज तो अण्डे को शाकाहारी बतलाने के लिये चित्रपटो पर, वृक्षो पर अण्डे के चित्र बतलाये जा रहे है जिससे जनता यह समझे कि जब अण्डा वृक्षो पर लगता है तो फिर शाकाहारी ही है। लेकिन ये सभी धारणाए भ्रान्त है।

अण्डा मांसाहारी है, सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से

इन सब हिसात्मक स्थिति के अतिरिक्त एक बडा अकरणीय कार्य यह हो रहा है कि अण्डे को शाकाहारी बतलाकर भोली जनता तो भ्रमित करने का प्रयास किया जा रहा है।

अण्डे को शाकाहारी बतलाने के लिये आधुनिक युग के लोगो द्वारा अनेक कुतर्क दिये जाते हैं। उनकी विचारणा के पहले सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को समझ लेना आवश्यक होगा।

प्रभु महावीर ने त्रस जीवो की गणना करते हुए सबसे पहले अण्डे का नाम लिया है।

तसा पाणा - अंडया पोएया जराउया ......

त्रस प्राणी मे सबसे पहले अण्डा लिया गया है। जिससे कबूतर, मयूर, मुर्गी आदि की उद्भूति होती है। अत इस दृष्टिकोण से अण्डे को मासाहारी ही माना जाता है।

इसमे आज के लोगो का यह तर्क है कि वही अण्डा मॉसाहारी हो सकता है जो नर मादा के सयोग से उत्पन्न हो, किन्तु जो नर–मादा के सयोग के बिना पैदा होता है उसका मॉसाहारी होना आवश्यक नहीं है। उन लोगो का यह मानना, सर्वथा असगत है क्योकि पुरूष–स्त्री के बिना शारीरिक सयोग के अण्डे की बात तो जाने दीजिये, सिद्धात की दृष्टि से मनुष्य भी पैदा हो सकता है।

एक बहिन नदी मे स्नान कर रही है, पानी मे पैठ करने के बाद कदाचित वह निर्वस्त्र हो जाती है। इधर प्रवाहमान पानी की ऊँचाई पर एक भाई स्नान कर रहा है, सयोगवश उसके प्रजनन शक्ति के पुद्गल बाहर निकल जाए और पानी के प्रवाह मे बहते हुए स्त्री की योनी मे प्रवेश कर जाए तो स्त्री के बिना पुरूष सयोग के इस प्रकार से गर्भादान हो सकता है। बिना पुरूष सयोग के भी सतानोत्पत्ति के पॉच कारण स्थानाग सूत्र मे स्पष्ट रूप से बतलाये गये है–

पंचहि ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणी विगब्भ धरेज्जा-तंजहा इत्थी दुव्वियडा दुण्णिसणा सुक्कपोग्गले अहिट्ठिज्जा सुक्को पोग्गल संसिट्ठे

व से वत्थे अंतो जोणीए, अणुपवे सेजजा सइंवासा सुक्क पोग्गले अणुपवेसेज्जा, परोव से सुक्कपोग्गले अणुणवेसेज्जा सीओदगवियडेण या से आयममाणीए सुक्क पोग्गला अणुपेवेसेज्जा। इच्चेहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेणं सद्धिं अवसमाणिं विगब्भ धरेज्जा।

पॉच कारणो से स्त्री, पुरूष के साथ सहवास न करने पर भी, गर्भ धारण करती है–

1 जिस स्त्री की योनी अनावृत हो, और वह जहॉ पर पुरूष का वीर्य स्खलित हुआ हो, ऐसे स्थान पर इस प्रकार बैठे कि जिससे शुक्राणु योनि मे प्रविष्ठ हो जाये तो गर्भाधान हो सकता है।

2 शुक्र लगा हुआ वस्त्र योनि मे प्रवेश कर जाए तो गर्भाधान हो सकता हे।

3 जानबूझकर स्वय शुक्राणुओ को योनी मे प्रवेश करावे तो गर्भाधान हो सकता है।

4 दूसरे के कहने पर शुक्राणुओ को योनी मे प्रवेश करावे तो गर्भाधान हो सकता है।

5 नदी नाले के शीतल जल मे स्नान करने के लिये कोई स्त्री जावे और उसमे उसकी योनी मे शुक्राणु प्रवेश कर जाये तो गर्भाधान हो सकता है

यह तो शास्त्र की बात हे, आज के वैज्ञानिक लोग ऐसे एक नही अनेक प्रयोग कर चुके हैं। वेज्ञानिक दृष्टिकोण से यह जाना जा सकता है कि कितने पुदगलो (कोशिकाओ की सामग्री मे) के प्रक्षेप से पुरूष की उत्पत्ति होगी। कितने पुदगलो के प्रक्षेपण से स्त्री की तथा कितने पुदगलो के प्रक्षेपण से नपुसक की उत्पत्ति होगी।

इसके साथ ही यह भी जान लिया जाता हे कि कितनी मात्रा मे पुदगल प्रक्षेपण से उसमे विकास होता है ओर कितनी मात्रा मे

पुद्‌गल न डालने पर विकास अवरूद्ध हो जाता है।

बिना शारीरिक सयोग से मुर्गी के द्वारा अण्डा देने से अण्डे को निर्जीव शाकाहारी नही माना जा सकता। क्योकि बिना सयोग के मात्र इन्जेक्शन द्वारा इन तत्त्वो को शरीर के भीतर पहुँचाने से गाय, भैस के भी गर्भ रह जाता है, और बच्चा भी पैदा हो जाता है। अत बिना सयोग से होने वाले अण्डे को निर्जीव नहीं कहा जा सकता। मुर्गी को सम्भव है कि इजेक्शन से यह तत्त्व पहुँचाकर उसकी खाद्य सामग्री द्वारा यह तत्त्व पहुँचा दिये जाते होगे, ऐसा लगता है, क्योकि बिना कारण के कार्य नही हो सकता। कार्य की निष्पत्ति मे उपादान, निमित्त तथा समर्थ सहकारी कारण सामग्री की अपेक्षा रहती है। उन मुर्गियो द्वारा रोजाना अण्डे दिये जाते है, उनके लिये उसी प्रकार की खाद्य सामग्री भी तैयार की जाती है। वैज्ञानिको को यह ज्ञान रहता है कि कितना तत्त्व मिलाया जाए कि जिससे मुर्गे का वीर्य और मुर्गी का रज यथयोग्य मिश्रित हो जाए। मुर्गी के खाने मे उतनी मात्रा मे वे तत्त्व मिला देते होगे, जिससे वे तत्त्व अण्डे का रूप तो ले सके, लेकिन विकसित न हो पावे, उस अण्डे का मुर्गी कितना ही पोषण कर ले किन्तु उसका विकास नहीं हो सकता। जिस मनुष्य योनी के गर्भ से छ सात मास मे ही कोई बालक गर्भाशय से बाहर आ जाता है तो उस बच्चे को माता कितना ही पोषण दे तो क्या वह परिपूर्ण विकसित हो पाएगा ? यदि नहीं, तो उसी प्रकार मुर्गी के विषय मे भी जानना चाहिये, इतने मात्र से अण्डे को निर्जीव नही कहा जा सकता। बिना जीव के सयोग से ही यदि अण्डा बनाया जा सकता है तो क्यो न वैज्ञानिक बाहर ही, प्रक्रिया से अण्डा पैदा कर लेते ? क्यो उन्हीं मुर्गियो के लिए मुद्दाम तौर पर खाद्य सामग्री बनाई जाती है ? और क्यो मुर्गियो के पालन आदि की कठिनाई करनी पडती है ? इन सभी कारणो से स्पष्ट है कि बिना गर्भाशय के उस प्रकार का आकार तैयार नही हो सकता।

जिस प्रकार सभी प्रकार की सामग्री तो पडी है किन्तु उसे उपयोग मे लेने वाला कोई नही हे तो वह सामग्री कार्यकारी नहीं हो

सकती, ठीक उसी प्रकार अण्डे की सारी सामग्री ही विद्यमान हो लेकिन यदि उसको व्यवस्थित रूप देने वाला कोई जीव नहीं है तो वह सामग्री अण्डे का रूप नही ले सकती। यदि कारीगर नही है तो ईंट, चूना, पत्थर आदि मकान का रूप नहीं ले सकते। कारीगर आ भी जाए लेकिन सामग्री मे छत निर्माण की वस्तुए नहीं है तो वह मकान का पूर्ण रूप नही बना सकता हे वैसे ही अण्डे उत्पन्न की सारी सामग्री मुर्गी के भीतर मे जाती है ओर योनि से सबधित होती है तब उसमे जीवोत्पत्ति होती है। वह जीव उस सामग्री को ग्रहण कर उसका परिणमन इस प्रकार करता हे कि जिससे वह सामग्री अण्डे का रूप ले लेती है। किन्तु उस सामग्री मे अण्डे के विकास के तत्त्वो का अभाव होने से अण्डा निर्जीव और शाकाहारी है, यह कतई नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा माना जाएगा तो अविकसित गर्भ को भी निर्जीव और निर्मास मानना होगा।

वीतराग देव के वचनो पर श्रद्धा रखने वाला कभी भी अण्डे को शाकाहारी या निर्जीव नही कह सकता। भगवद् वाणी असदिग्ध सत्य है। उन्होने जो कुछ रहस्यमय अनेक वर्णन किये हें जिनमे से अनेक रहस्यो की खोज आज तक वैज्ञानिक लोग नहीं कर पाए हें जहाँ शास्त्र मे वर्णन आता है कि एक गर्भ लगातार बारह वर्ष तक रह सकता हे। उसके बाद मरकर पुन वही उत्पन्न होकर बारह वर्ष ओर रह सकता हे। इस प्रकार एक जीव गर्भ मे चोबीस वर्ष तक रह सकता हे। इस शास्त्रीय बात को वैज्ञानिक आज तक स्पष्ट रूप से खोज नहीं पाए हें, जबकि आज के युग मे भी ऐसी अवस्था देखने को मिली है।

जब मेरा चातुर्मास राजनादगाव मे था। उस समय गोंदिया की एक प्रौढ बहिन आई दीक्षा लेने की विचारणा व्यक्त करने लगी। मेंने ज्ञान–ध्यान सिखाने एव उसकी जानकारी करने के लिये शासन प्रभाविका महासती श्री नानू कॅवर जी को सकेत किया। महासती जी ने एक–दो दिन मे ही उसकी स्थिति देखकर बताया कि यह तो गर्भवती हे ओर उसका गर्भ पॉच–सात महीने का नहीं अपितु 14 वर्ष का ह।

वहाँ गर्भ 14 वर्ष तक जीवित न होता तो गर्भवती माता के शरीर मे जहर फैल जाता। लेकिन ऐसा नही हुआ, और गर्भगत जीव की अभिवृद्धि भी नही हुई जिससे गर्भगत् जीव बाहर आ सके। अत स्पष्ट है कि गर्भ की ऐसी अवस्था भी हो जाती है कि पोषण होने पर भी अमुक तत्त्व की कमी से गर्भ विकसित नही हो पाता है। इतने मात्र से वह निर्जीव तथा निर्मांस नही कहा जा सकता। अविकसित अण्डो की भी यही स्थिति समझनी चाहिए। क्योकि वह भी गर्भ निर्मित है, वैसा निर्माण जीव के बिना नही होता।

ऐसे एक नही अनेक उदाहरण हैं। वैज्ञानिको की कसौटी पर भी प्रभु द्वारा प्रतिपादित कितने ही सिद्धान्त सत्य सिद्ध हो चुके हैं। जो सत्य है, वह सत्य ही रहेगा। हमारे समझने मे विलम्ब हो सकता है। किन्तु प्रभु के सिद्धान्त जो असदिग्ध सत्य है। प्रभु ने स्पष्ट रूप से अण्डे मे जीवत्व का प्ररूपण किया है और उसे पचेन्द्रिय बतलाया है।

अण्डा–आहार : नरकगमन में हेतु

शास्त्रकार ने नरकगमन के चार कारण बताए हैं– 1 महारभ 2 महापरिग्रही 3 पचेन्द्रिय का घात करने वाला 4 मासाहार करने वाला।

उपर्युक्त चार कारणो मे दो कारण तो मुख्य रूप से अण्डाहार मे आ जाते है। क्योकि अण्डा पचेन्द्रिय जीव है। उसको खाने वाला पहले उसका हनन करता है तो पचेन्द्रिय जीव की हिसा का प्रसग बनता है। फिर उसको खाता है तो मासाहार का प्रसग बनता है। इस प्रकार एक अण्डे का आहार करने मे नरकगमन के दो हेतु बन जाते है।

अत आर्य सस्कृति के उपासको को तो कभी भी अण्डे का सेवन करना ही नहीं चाहिये। सामान्य अवस्था की बात तो दूर रही, शरीर मे भयानक रोग भी आ जाए, मारणातिक कष्ट की स्थिति हो, तथाकथित डॉक्टर का परामर्श हो कि अण्डे लेने से ठीक हो जाएगा

तथापि आर्य पुरूषों को मासाहार से दूर ही रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिन वस्तुओ के निर्माण मे महापाप हो ओर जो वस्तु जीवन के लिए अनिवार्य उपयोगी नहीं हो, उसका भी परित्याग कर देना चाहिये। आज फेशनेबल चीजो से कितनी क्या हिसा हो रही हे, इस पर आप सभी को गहराई से विचार करना आवश्यक हे।

वैज्ञानिक सभी अभिमत सत्य नहीं होते

वेज्ञानिको के अभिमत को स्पष्ट सत्य नहीं माना जा सकता। छद्मस्थ व्यक्ति कितना ही ज्ञानी हो, आखिर हे तो अपूर्ण ही, ओर भोतिक विज्ञान मे निमग्न रहने वाले वैज्ञानिको के पास मे आत्म अनुभूतिपरक ज्ञान तो होता नही है। भोतिक अनुसधानो के माध्यम से ही उनके निर्णय होते हैं। अत सिर्फ उनको सत्य मानकर चलना कतई अभीष्ट नहीं रहता। अनेक विचारशील वेज्ञानिको का तो यह स्पष्ट कहना हे कि हमारी खोज अपूर्ण हे। हम निर्णयात्मक रूप से सत्य नहीं कह सकते। वेज्ञानिक जेम्सजीन्स ने तो स्पष्ट शब्दो मे कहा हे--

''कोई भी व्यक्ति हम वेज्ञानिको को सत्य मानने की भूल कभी नही करे। क्योकि हमारे बहुत से सत्य असत्य हो चुके हैं।

वेज्ञानिको का भी जब इतना स्पष्ट कथन हे, तब उनकी बात को लेकर प्रभु के सिद्धान्तो को सदिग्ध दृष्टि से देखना कहॉ तक उपयुक्त हे। वेज्ञानिक जिस सिद्धान्त को आज स्पष्ट करते हें, उसे कल की खोज पर बदल भी सकते हैं। अण्डे आदि का प्रचलन प्राय विदेशो से हुआ हे। वहा कृषि कर्म के लिये क्षेत्रफल कम होने से अण्डा उद्योग, मछली उद्योग आदि का कार्य प्रारभ किया गया। भारतीयो ने उन्हीं विदेशी लोगो की नकल कर ली, लेकिन यह नही सोच पाए कि यह हमारी सस्कृति के विपरीत हे। उनके पास तो क्षेत्रफल कम हे कृषि के लिये जबकि भारतीयो के पास पर्याप्त क्षेत्रफल हे।

लगता है कि अण्डे का प्रचार-प्रसार करने के लिये ही उसे शाकाहारी तथा निर्जीव बतलाया जा रहा हे। भोली जनता को इस

कुचक्र से बचना चाहिये तथा प्रचार–प्रसार का अहिंसक रूप से विरोध होना आवश्यक है। जब तक जनमानस जागृत नहीं होगा, तब तक यही स्थिति चलती रहेगी।

अण्डा मांसाहार है : वैज्ञानिक दृष्टि से भी

कई तटस्थ वैज्ञानिको ने तो अण्डे को मासाहारी तथा सजीव बतलाया है और उसे शरीर के लिये घातक सिद्ध भी किया है।

वैज्ञानिको ने अपनी खोज मे बतलाया है–

अण्डो मे अब तक छ प्रकार के विष पाये गये हैं– 1 कोलेस्टरोल 2 लाइपोप्रोटीन्स 3 सैच्युरेटिड फैटी एसिड्स 4 एस आर फ्रेक्शन 10 से 20 तक 5 माइक्रोग्लोब्युलिन्स 6 डी डी टी।✤ ये विष अण्डे के माध्यम से शरीर के भीतर जाकर धमनियो, हृदय, मस्तिष्क, गुर्दा, जिगर आदि को हानि पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त हृदय रोग, पक्षाघात, रक्तचाप वृद्धि, पैरो मे दर्द, पित्ताशय मे पथरी जैसे भयकर रोग भी अण्डे के खाने से उत्पन्न हो जाते है। ये रोग पाचन शक्ति को नष्ट करते है और आयु को घटाते हैं। आज के लोग जो यह समझकर अण्डे खाते हैं कि हमे इससे शक्ति मिलेगी। लेकिन वैज्ञानिको ने इस बात को भी अपने अनुसधान के द्वारा स्पष्ट कर दिया कि–अण्डे मे शक्तिदायक तत्त्व शर्करा (कार्बोहाइड्रेट्स) तथा विटामीन 'सी' बिल्कुल नही होते। कैलशियम और बी काम्पलैक्स विटामीन भी नही के बराबर होते है। शक्तिदायक तत्त्वो की कमी होने के कारण तथा विषैले तत्त्वो की बहुलता से आतडियो मे सडान पैदा कर देते हैं। जिस अण्डे से मुर्गी उत्पन्न नही होती, प्रचार के लिये कुछ लोग उसको अपने व्यापार की बिक्री बढाने हेतु "शाकाहारी अण्डा" बतौर उपनाम भी

✤ Modern science has found the following harmful substances in egg which damage the organs of the human body in different ways and cause many diseases in the human beings 1 CHOLESTEROL 2 LIPOPROTEINS 3 SATURATED FATTY ACIDS 4 S R FRACTION 10 TO 20 5 MICRO GLOBULINS 6 D D T

कह देते हैं। वास्तव मे यह मुर्गी का गर्भपात होता हे जो खून, मलमूत्र आदि से भीगा होकर मुर्गी के पेट से बाहर निकल पडता हे। इसमे साधारण अण्डे की अपेक्षा बीमारी पेदा करने की शक्ति अधिक होती हे।✠

जीवो की उत्पत्ति मुख्यतया दो प्रकार से होती हे। आवी ओर पेशावी। आवी जिसे शाकाहारी कहा जाता है, जिसमे फल, फूल आदि वनस्पति ली जाती हे। पेशावी को मासाहार कहा जाता है–उसमे अण्डा, मास, मछली आदि आती हे। इस दृष्टिकोण से भी अण्डा मासाहार ही हे। मास खाना मानव की प्रकृति के प्रतिकूल हे। पशुओ की प्राकृतिक रचना को देखकर इस बात का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता हे। मासाहारी पशु जो होते है उनके दात, नाखून तीव्र, तीखे ओर भिन्न प्रकार के होते हें, जबकि शाकाहारी पशु गेया, भेंस, बकरी आदि मे वैसी स्थिति नहीं होती। शाकाहारी पशु होठ से पानी पीते हैं जबकि मासाहारी पशु जिह्वा से पानी पीते हें। मानव की प्राकृतिक रचना भी शाकाहारी पशुओ जसी ही है।

रावर्ट ग्रीस, डॉ जे अनन आदि ने अण्डे से कोलेस्ट्रोल की अधिकता के कारण हार्ट अटेक, हाई ब्लड प्रेशर, पथरी आदि अनेक रोगो की उत्पत्ति बताई हे।

व्यावहारिक दृष्टि से भी देखा जाए तो आप देखेंगे कि जब एक मनुष्य के शरीर मे दूसरे मनुष्य का रक्त भी दिया जाता हे तब डोक्टरो द्वारा उसका भी मिलान किया जाता हे यदि नहीं मिलता है

✠ "Egg food which a chicken does not come out some people also call it, by nick name "Vegetanan egg" for business purpose to increase their sale In reality it is a type of abortion of a hen which is moistened with unne blood and faecul matter It has more potential of creating diseases in human body than an ordinary egg It is not a vegetable substance Normally such type of eggs are not producted They are not available in the market and an average person can not recognise them

तो रक्त नही दिया जाता। दे देने पर घातक स्थिति आ सकती है। अब आप विचार कीजिये कि मानव का खून भी मानव के लिये घातक बन सकता है, तो जो पशु के खून और मास हैं, उनके तत्त्वो से बना अण्डा वह मानव के लिये आरोग्यप्रदायक एव अनुकूल कैसे हो सकता है ?

मारगरेट अस्पताल के वरिष्ठ डॉ ओल्ड फील्ड का कहना है कि– मास मनुष्य के लिये अप्राकृतिक खाद्य है। ऐनीबीसेण्ट ने एक जगह लिखा है कि पशु हत्या से मानवी प्रकृति मे क्रोध, आवेश, कामुकता, ईर्ष्या, प्रतिरोध जैसे अमानुषी तत्त्व बढते हैं। अमेरिका के आहार शास्त्री एल एच एण्डरसन ने अपने भोजन विज्ञान सबधी ग्रन्थ मे लिखा है कि – "हम सभ्यताभिमानियो के हाथ मूक और उपयोगी पशुओ के रक्त से रगे हैं। हमारे माथे पर उनके खून का कलक है। हमारा पेट एक घिनौना कब्रिस्तान है। शरीर की दुर्गन्ध हमारे मुख से निकल रही है। क्या यही हमारा मानवोचित आहार है ? यह राक्षसी वितृष्णा का परिपोषण करना है।"

इसके साथ ही यह बात भी स्पष्ट कही गई है–

मास मे 40 प्रतिशत विषाक्त एव मल वर्ग का पदार्थ विभिन्न नस–नाडियो मे भरा रहता है। खाने वालो को जहॉ 60 प्रतिशत पोषक पदार्थ मिलते है। वही 10 प्रतिशत विकृत वर्ग का आहार भी उदरस्थ करना पडता है।

मासाहार से होने वाले परिणाम को डॉक्टर रोगर ने इस प्रकार स्पष्ट किया है–"कुछ चूहो को अनाज पर और कुछ को मास पर रखा। मासाहारी चूहो का पेशाब, बदबूदार, मल काला और गुर्दा सूजा हुआ पाया गया, जबकि अन्नाहारी चूहे पूर्ण स्वस्थ थे।"

शाकाहारी को अधिक क्षेत्रफल चाहिये या मासाहारी को, इस बात को स्पष्ट करते हुए डॉ रिचार्ड वी ग्रेक ने अपने सर्वेक्षण मे लिखा है कि शाकाहारी व्यक्ति के लिये डेढ एकड जमीन से गुजारे लायक खाद्य सामग्री प्राप्त हो सकती है, जबकि मासाहारी के लिए ढाई एकड

प्रति व्यक्ति जमीन चाहिए। कारण यह हे कि पशु मनुष्य की तुलना मे प्राय बीस गुना भोजन करते हें। वे अपने जीवनकाल मे जितना चारा खाते हें उसका दो हजारवा भाग खाने योग्य मास दे पाते हैं। काटने पर भी उनका 65 प्रतिशत भाग तो चमडी, हड्डी, सीग, खुर, आते, रक्त, मल आदि भाग अखाद्य रहता है। खाने योग्य मास तो 20 प्रतिशत ही पडता हे। इस तरह मास की दृष्टि से पाले गये पशु अधिक उपज खाते हें ओर कम मात्रा मे खाद्य उत्पन्न करते हे। अत वे खाद्य समस्या को सुलझाते नहीं, उलझाते अधिक हैं।

राज्जनो ! ऐसे एक नही अनेक अनुसधानो से यह स्पष्ट हो जाता हे कि अण्डा सजीव एव मासाहार हे।

प्रभु की वाणी से भी अण्डा जीवन के लिये महान् हानिकारक एव नरक गमन हेतु है। वेज्ञानिको की वाणी से भी अण्डे से शारीरिक एव मानसिक हानि स्पष्ट हो गई हे। आप लोगो मे भी इस विषय की काफी चर्चा चल रही थी कि अण्डा मासाहारी हे या नहीं ? अत मेंने आज इस बात को स्पष्ट करना अधिक उपयुक्त समझा।

जागृत हो जाइए

सज्जनो ! इस आधुनिक युग मे भ्रामक प्रचारो से अपने आपको बचाना एव अन्य मानवो को बचाना आपका कर्तव्य हो जाता है। कही–कही विदेशो मे तो मासाहार का प्रचार कम हो रहा हे। डेनियल पी हाक ने यहा तक कहा हे कि अमेरिका मे शाकाहार इतना विस्तार पा चुका हे कि मास विक्रेताओ को अपना माल खपाने के लिये विज्ञापन व प्रलोभन देने को बाध्य होना पडता हे।

बधुओ ! जागिये आप सबको श्रमण सस्कृति एव भारतीय सस्कृति की रक्षा करने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। आप आत्म शाति चाहते हे लेकिन खान पान मे भी यह शुद्धता नही आई तो आत्म समीक्षण कैसे हो सकता हे ? आत्म–समीक्षण के लिये खान–पान एव जीवन मे नैतिकता तथा प्राणियो के प्रति आत्मीयता

आना आवश्यक है।

भारतीय एव अहिसक सस्कृति के सभी अनुयायियो से यह अनुरोध है कि वे इस सस्कृति की विशुद्ध परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जागृत हो जाये। अब तक तो अण्डे को शाकाहारी रूप मे स्पष्ट मान्यता प्राप्त नहीं हुई है, लेकिन शाकाहारी जनता यदि जागरूक नही हुई और अहिसक असहयोग का रूप नहीं लिया तो निकट भविष्य मे ही वह स्थिति आ सकती है। और उसका शाकाहारी समाज पर कितना बुरा प्रभाव पडेगा, आने वाली सन्तान की क्या स्थिति बनेगी तथा भारतीय सस्कृति की क्या दशा होगी? कुछ कहा नही जा सकता।

अण्डे के विरोध मे अहिसक रूप से यथायोग्य असहयोग का रूप आर्य सस्कृति के सभी धर्माधिकारी तथा प्रबुद्ध एव अनुयायी वर्ग ले– चाहे जैन हो या जैनेतर, जनता हो या शासक वर्ग। क्योकि यह प्रश्न किसी धर्म या सम्प्रदाय का नही है बल्कि मानवीय सस्कृति का है। मानवीय सस्कृति को देखते हुए मास व अण्डाहार मानव की प्रकृति के प्रतिकूल है। अनेक रोग एव व्याधियो का उत्पादक है। इन सब रोगो से मानव को उबारना प्रत्येक मानव का कर्तव्य होता है। शासक वर्ग को तो इस विषय पर विशेष गौर करना चाहिए। इनमे जो खाद्य समस्या का हल करने वाले महानुभाव है, वे इस विषय पर विशेष ध्यान दे।

इस अहिसक महायज्ञ मे अपनी–अपनी मर्यादा मे रहते हुए दृढ सकल्प के साथ अविरल रूप से आगे बढेगे तो अवश्य ही कुछ सुखद क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित होगा। □□

मानव और मानवता
(जोश और होश का समन्वय)

- अन्तरग का विज्ञान बाह्य जीवन से
- अमूल्य मानव तन
- गरीब कौन ?
- दुर्लभता . मानव जीवन की
- मानव की इतनी पैदाइश कैसे ?
- मानवता की खोज
- अन्तरग जीवन के चित्र
- आज के लोगो का मस्तिष्क
- युवको की धर्म के प्रति अरूचि का मूल
- जन प्रवाह और मानव
- जनसत्ता क्या नहीं कर सकती ?
- मानवता–परीक्षक नीतिवाहन
- आवश्यकताए किसके कितनी
- मानवता का ज्वलन्त प्रतीक एक किसान
- चार अगो की स्थिति कितनी क्या है मानवो मे ?
- अभिषेक एक किसान द्वारा
- समीक्षण करो जीवन का

चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणिय जतुणो।
माणुसत्त सुइ सद्धा, सजमम्मि य वीरिय।।

—उत्तराध्ययन सूत्र – 3/2

इस आत्मा को चार अगो की प्राप्ति बहुत दुर्लभ है—मनुष्यत्व धर्म–श्रवण, धर्म–श्रद्धा सयम के प्रति पराक्रम।

मनुष्य जन्म प्राप्त करने मे जितनी कठिनाई नही होती उससे भी अधिक कठिनाई मनुष्यत्व प्राप्त करने मे है।

आना आवश्यक है।

भारतीय एव अहिसक सस्कृति के सभी अनुयायियो से यह अनुरोध है कि वे इस सस्कृति की विशुद्ध परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जागृत हो जाये। अब तक तो अण्डे को शाकाहारी रूप मे स्पष्ट मान्यता प्राप्त नहीं हुई है, लेकिन शाकाहारी जनता यदि जागरूक नही हुई और अहिसक असहयोग का रूप नहीं लिया तो निकट भविष्य मे ही वह स्थिति आ सकती है। और उसका शाकाहारी समाज पर कितना बुरा प्रभाव पडेगा, आने वाली सन्तान की क्या स्थिति बनेगी तथा भारतीय सस्कृति की क्या दशा होगी? कुछ कहा नही जा सकता।

अण्डे के विरोध मे अहिसक रूप से यथायोग्य असहयोग का रूप आर्य सस्कृति के सभी धर्माधिकारी तथा प्रबुद्ध एव अनुयायी वर्ग ले– चाहे जैन हो या जैनेतर, जनता हो या शासक वर्ग। क्योकि यह प्रश्न किसी धर्म या सम्प्रदाय का नही है बल्कि मानवीय सस्कृति का है। मानवीय सस्कृति को देखते हुए मास व अण्डाहार मानव की प्रकृति के प्रतिकूल है। अनेक रोग एव व्याधियो का उत्पादक है। इन सब रोगो से मानव को उबारना प्रत्येक मानव का कर्तव्य होता है। शासक वर्ग को तो इस विषय पर विशेष गौर करना चाहिए। इनमे जो खाद्य समस्या का हल करने वाले महानुभाव है, वे इस विषय पर विशेष ध्यान दे।

इस अहिसक महायज्ञ मे अपनी–अपनी मर्यादा मे रहते हुए दृढ सकल्प के साथ अविरल रूप से आगे बढेगे तो अवश्य ही कुछ सुखद क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित होगा। □□

मानव और मानवता
(जोश और होश का समन्वय)

- अन्तरग का विज्ञान बाह्य जीवन से
- अमूल्य मानव तन
- गरीब कौन ?
- दुर्लभता मानव जीवन की
- मानव की इतनी पैदाइश कैसे ?
- मानवता की खोज
- अन्तरग जीवन के चित्र
- आज के लोगो का मस्तिष्क
- युवकों की धर्म के प्रति अरूचि का मूल
- जन प्रवाह और मानव
- जनसत्ता क्या नहीं कर सकती ?
- मानवता–परीक्षक नीतिवाहन
- आवश्यकताए किसके कितनी
- मानवता का ज्वलन्त प्रतीक एक किसान
- चार अगो की स्थिति कितनी क्या है मानवो मे ?
- अभिषेक एक किसान द्वारा
- समीक्षण करो जीवन का

चत्तारि परमगाणि दुल्लहाणिय जतुणो।
माणुसत्त सुइ सद्धा, सजमम्मि य वीरिय।।
–उत्तराध्ययन सूत्र – 3/2

इस आत्मा को चार अगो की प्राप्ति बहुत दुर्लभ है–मनुष्यत्व, धर्म–श्रवण, धर्म–श्रद्धा, सयम के प्रति पराक्रम।

मनुष्य जन्म प्राप्त करने मे जितनी कठिनाई नहीं होती उससे भी अधिक कठिनाई मनुष्यत्व प्राप्त करने मे है।

जब तक मानवता नही आती, तब तक वह सच्चे अर्थों मे मानव कहला नहीं सकता। जिस मानव तन मे पशुत्व वृत्ति, दानवीय वृत्ति रही हुई है वह मानव तन मे रहकर भी एक दृष्टि से पशु या दानव है।

मानव मे मानवता को उभारने के लिए यथायोग्य सामजस्य की आवश्यकता है।

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, धन नामी पर नामी रे।
निराकार साकार सचेतन, करम करम फल गामी रे।।
निराकार अभेद सग्राहक, भेद ग्राहक साकारो रे।
दर्शन ज्ञान दुभेद चेतना, वस्तु ग्रहण व्यापारो रे।। ।।1।। वासु

बन्धुओ । जिसका कथन नहीं किया जा सके ऐसा अनिर्वचनीय उपकार करने वाले परम पवित्र तीर्थंकर देव के चरण कमलो मे स्तुति के माध्यम से समर्पण भाव लेकर उनके उपदेश का उनके द्वारा प्ररूपित, शास्त्र वाणी का विश्लेषण भव्य जनो के समक्ष करने का प्रसग वर्तमान मे आता है। मानव तन के अन्दर रहने वाली आत्मा अपने समग्र स्वरूप को परिपूर्ण रूप से समझ नहीं पा रही है। उसके अन्दर समझने का सामर्थ्य है। वह स्व-पर विज्ञान के साथ अपने स्वरूप को भलीभाति समझ सकती है। परन्तु जब समझने का प्रयास सद्भावना के साथ दृढ सकल्प पूर्वक किया जाए तो कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो मनुष्य से अज्ञात रह सके। ज्ञानी जनो का सकेत है कि -

"बुज्झ । बुज्झ किं न बुज्झह"

हे भव्य प्राणियो । बोध पाओ । बोध पाने का तात्पर्य है कि आत्म जागरण से सम्पन्न बनो।

अन्तरंग का विज्ञान बाह्य जीवन से

बोध पाने का सम्यक् अवसर, वास्तविक समय मनुष्य जीवन

मे मिला है। मनुष्य जीवन की ही ऐसी विशेषता है कि जिसमे आत्मा समग्र विश्व का विज्ञान और उस विज्ञान के अन्तर्गत आत्मा और परमात्मा का विज्ञान भी प्राप्त कर सकती है। इस मनुष्य तन को यह आत्मा अगीकार करके चल रही है परन्तु मनुष्य जीवन के योग्य कर्तव्य कर्म को जानने की बहुत कम कोशिश करती है। मानव दो हाथ, दो पैर, नेत्र, कर्ण, नाक, जिह्वा और स्पर्शेन्द्रिय के साथ सर्वत्र परिलक्षित होता है कि वह स्वय अपने आप मे क्या है और बाहर मे किस रूप मे है ? बाहरी वस्तु को बाहर से देखने पर बाहर का स्वरूप ही ज्ञात हो सकता है। भीतर मे अनुमानत कुछ ज्ञान किया जा सकता है। व्यक्ति आम के मौसम मे जब आम देखता है तो यह ठीक है या वो ठीक है, उसकी पहचान ऊपर के आकार प्रकार से ही होती है। आम के ऊपरी स्वरूप को ठीक तरह से पहचान करके वह उसको खरीदता है और अनुमान करता है। इसका आकार प्रकार ऊपर का ठीक है तो इसमे रस भी मीठा होगा, और अच्छा होगा। बहुलता उसी की रहती है, और जैसा वह अनुमान करता है वैसा ही आम का रस निकल जाता है। बाहर की प्रक्रिया, बाहर का आकार प्रकार, उसके भीतर की वृत्ति को प्राय प्रकट करने वाला बनता है। मनुष्य की आकृति जिस रूप मे आज दृष्टिगत हो रही है, उस आकृति का ज्ञाता जिसने मनुष्य जीवन का विज्ञान पढा है, मनुष्य जीवन सम्बन्धी समस्त प्रक्रियाओ को जानता है तो वह पुरूष उसकी भीतरी आत्मा का अनुमान कर सकता है।

अमूल्य मानव तन

परन्तु जिनका ध्यान, जिनके विचार मनुष्य के भीतरी तत्त्वो की तरफ नहीं हैं और बाहरी पदार्थो को जानने मे ही सारी शक्ति लगाते हैं वे मानव की पहचान सही रूप मे नहीं कर पाते है और जहॉ मानव की पहचान नहीं होती वहॉ मानव के साथ क्या व्यवहार करना चाहिए, इसका भी विज्ञान नहीं होता। वे बाहरी दृश्यो को ही लेकर बहुमूल्य थाती, बहुमूल्य उपलब्धि वैसे ही गॅवा देते हैं, जिस प्रकार एक गवार

चिन्तामणि रत्न को बिना पहचाने पत्थर समझ कर फेक देता है। चिन्तामणि रत्न की पहचान जौहरी ही कर सकता है। रत्न तो मूल्यवान ही है परन्तु एक दृष्टि से देखा जाए तो मानव तन मूल्यवान ही नही, अमूल्य है। इसका एक–एक अवयव भी कही सहज मे उपलब्ध नही होता। इतने बडे शहर मे यदि कोई बाहर का व्यापारी आकर जीवित मनुष्य के दो नेत्र मागना चाहे कि मुझे दो नेत्र चाहिये और एक–एक नेत्र के दस–दस लाख रूपये देने को तैयार हूँ तो कहिये। इस अहमदाबाद शहर मे नेत्र देने वाले कितने व्यक्ति मिल जाएगे? क्या कुछ आप कह सकते हैं? नजदीक से तो आवाज आई कि एक भी नहीं मिल पाएगा। क्यो? क्या मनुष्य के नेत्रो की दस लाख से भी अधिक कीमत है? और अधिक देने को तैयार हो जाए, तब तो मिल जायेगे? नही मिलेगे।

एक दूसरा व्यापारी कदाचित पहुँचा और वह चाहे कि मनुष्य की जिह्वा– जबान जिससे वह बोलता है, चखता है, वह तालवे से लेकर सारी चाहिये और उसके लिए भी वह बीस लाख रूपये देने को तैयार है। तो है कोई देने को तैयार ? कोई देने वाला मिलेगा? नही। इतने मे तीसरा व्यापारी आया– और वह चाहे कि आजकल कई व्यक्तियो के हार्ट कमजोर हो गए हैं उनके लिए हार्ट चाहिये। यदि कोई जिन्दा मनुष्य हार्ट देता है तो दस अरब रूपये देने को तैयार है। क्या मिल सकेगा हार्ट देने वाला? नहीं। तो अब कल्पना कीजिये। मानव जिसकी उपलब्धि को लेकर चल रहा है, उसका मूल्याकन करिये। इन अवयवो की इतनी–इतनी धन राशि देने पर भी उन्हे देने वाला नही मिल सकता तो आज के मानव का मूल्याकन किस रूप मे किया जाये?

गरीब कौन?

कई भाई अपने अन्दर इन भावो को लेकर चल रहे है कि हम गरीब हैं, कमजोर हैं, हमारे पास सम्पत्ति नहीं है और अमूक के पास धन है। मैं सोचता हूँ कि यह भावना कहॉ से प्रवेश कर गई? शरीर

मे भिन्न तत्वो का वह मूल्याकन कर रहा है। चद चॉदी के टुकडो को वह महत्व दे रहा है ओर उसके पिछे बहुमूल्य जिन्दगी का अवमूल्यन कर रहा है। क्या यही इस मानव तन मे रहने वाली आत्मा का विज्ञान है? हर आत्मा को विवेक की आवश्यकता है। इस अमूल्य जीवन का यदि मानवता के धरातल पर सदुपयोग किया जाए और आध्यात्मिक धरातल तक अन्तर शक्ति का समीक्षण किया जाए तो यह बाहरी सम्पत्ति, वैभव उसके चरणो मे लोट–पोट हो जाएगा। वह ठोकर मारेगा तो भी उसके साथ पडेगा। स्वर्ग का राजा इन्द्र भी नतमस्तक हो जाएगा। विश्व का वेभव तो एक तरफ, विश्व की सारी सम्पत्ति एक पलडे मे रख दी जाए और इधर मानव जीवन का मूल्य, मानव जीवन की गरिमा दूसरे पलडे मे रख दी जाए, तब भी इसकी तुलना नही की जा सकती। इतना बहुमूल्य जीवन अन्य प्राणियो को उपलब्ध नही हुआ है। पशु योनि मे रहने वाले पशु, उनमे भी आत्मा है, परन्तु विवेक–ज्ञान नही। स्वर्ग की आत्मा शारीरिक दृष्टि से सौन्दर्य से असाधारण है। परन्तु जो क्षमता मानव तन मे है वह उसमे नही है। नरक मे रहने वाली अनेक आत्माएँ इस मनुष्य तन का दुरूपयोग करके दण्ड भोग रही हैं, सजा भोग रही हैं। वहॉ भी उसके विकास का प्रसग नहीं है जो इसी तन मे मानव जातीय जीवन मे है। परन्तु इसका सदुपयोग तभी हो सकता है, जबकि वह विवेक का दीपक लेकर चले।

दुर्लभता : मानव जीवन की

भगवान महावीर ने स्वय उद्घोषित किया है कि–

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणि य जंतुणो।
माणुसत्तं सुइ सद्धा संजमम्मि य वीरियं।।

जिन्होने समग्र ज्ञान को प्राप्त कर लिया है। केवल ज्ञान, केवल दर्शन से सम्पन्न बने अर्थात आध्यात्मिक उपलब्धि से जो ज्ञान प्राप्त किया वही भव्य प्राणियो के लिए उपस्थित किया। किसी प्राणी

को चार अगो का मिलना बडा दुसाध्य है। अग का तात्पर्य तो आप समझ गये होगे। जैसे मनुष्य के शरीर के अग, हाथ, पैर सीना वगैरह सारे अग है वैसे ही जीवन के चार अग बताये हैं, उनमे सबसे पहला अग "माणुसत" मनुष्यपना, मानवता, इन्सानियत है। जिसमे मानवता ठीक तरह से व्याप्त हो गई, मानवता से जो व्यक्ति लबालब भर गया, वह मनुष्यपने की स्थिति को वर सकेगा। मनुष्य जीवन की दुर्लभता सिर्फ दे हाथ, दो पैर, दो ऑखे, दो कान आदि की उपलब्धि मात्र ही नही है।

मानव की इतनी पैदाइश कैसे ?

शास्त्रीय वचनो को सुनकर कई महानुभावो के मस्तिष्क मे प्रश्न उपस्थित होगा कि शास्त्रकार मनुष्य जीवन की दुर्लभता बता रहे हें। परन्तु आज के युग मे मनुष्य बहुत पैदा हो रहे हैं। परन्तु बन्धुओं ! अपने कर्तव्य कर्मो से वे ऐसे ज्ञात हो रहे है, जो मनुष्य के सर्वथा योग्य नही हैं। पशु जगत से भी बदतर कार्य हो रहे है। राक्षसी वृत्ति आज के बहुताश मनुष्यो मे व्याप्त हो रही है। कुकर्म करने वाले मनुष्य, मनुष्य होते हुए भी पशु, राक्षस हैं। मनुष्य की प्राप्ति तो पुण्यवानी से मिलती है। मनुष्य तन मिलने मे इतनी कठिनाई नही, जितनी कठिनाई मनुष्यत्व के मिलने मे है। अत सख्या को देखते हुये आपकी दृष्टि मे दुर्लभ मानव तन सुलभ बनता जा रहा है। सरकार सतति नियत्रण कर रही हे, आपके विचार बनते होगे कि गत वर्षो से इन वर्षो मे मानवो की सख्या बहुत बढ गई है। बन्धुओ ! इस जिज्ञासा तृप्ति के लिए शास्त्रीय वचनो पर ख्याल रखना है। शास्त्रकारो ने दो हाथ, दो पैर के मनुष्य की नहीं कही है। ऐसी आकृति के तो बहुत सारे मनुष्य पैदा हो सकते हें। उनमे अपेक्षाकृत पुण्यवानी की तो आवश्यकता है। वास्तव मे मनुष्यपने की दुर्लभता है। आज मनुष्य बहुत हैं, परन्तु मानवता कितनी हे? एक–एक मानव की पिक्चर देखी जाए, एक–एक मानव के जीवन का चलचित्र लिया जाए और जीवन का कुछ न कुछ निचोड रखा जाए तो पता लगेगा कि मानव किस तरह चल रहा हे?

मानवता की खोज

फॅारेन मे एक बहुत बडे दार्शनिक कुछ वस्तुओ की खोज करने के लिए निकले। मध्याह्न का सूर्य तप रहा था, सूर्य का स्पष्ट प्रकाश होते हुये भी अपने हाथ मे जलता हुआ गैस लेकर चल रहे थे। साथ ही आने–जाने वाले व्यक्ति को देखने के लिए बार–बार गैस उठा रहे थे। यह देखकर नागरिको ने आपस मे कहा कि ये कौन है? कहॉ से पागल आ गया हे? अरे! सूर्य का तेज प्रकाश मौजूद है तो भी यह पागल गैस जला कर चल रहा है। वस्तु का दुरूपयोग कर रहा है और समय को व्यर्थ मे नष्ट कर रहा है। दूसरो को गैस से देख रहा है तो पागल नही तो क्या है?

परन्तु चिन्तक व्यक्तियो ने गहराई से इसका चिन्तन किया और उससे पुछा कि आप यह क्या कर रहे हैं? हॅसी की बात बन रही है, लोग मजाक उडा रहे हैं कि दिन मे गैस जलाकर क्या देखने की चेष्टा कर रहे हैं? उस दार्शनिक ने कहा– मैं मानवता की खोज कर रहा हुॅ। जहॉ नदी के प्रवाह की तरह जो मानव समुदाय चल रहा है, उसमे वास्तविक मानव कितने हैं, सूर्य का प्रकाश कम पड जाए तो गैस जलाकर बारीकी से देखना चाहता हूॅ कि मानवता दिख पाती है या नही? उस पर दार्शनिक को मानवता दृष्टिगत नहीं हुई।

अंतरंग जीवन के चित्र

बन्धुओ! आप चिन्तन कीजिये कि आज मानव क्या सोचता है और क्या नही सोचता? आज का विज्ञान किस रूप मे दुनिया के सामने आ रहा है? जहॉ विज्ञान का आविष्कार भौतिकता की दृष्टि से हुआ तो कम्प्युटर भी दुनिया के सामने आ गये और कुछ ऐसी मशीने भी सामने आ चुकी हैं जो व्यक्ति के विचारो को वह जान सके। व्यक्ति चलता–फिरता ही अपने विचारो के अनुरूप अपने फोटो तैयार करता है और वह इस वायु मडल मे छोड देता हे। इस वायु मडल मे, इस आकाश मे प्रत्येक व्यक्ति का मानसिक चित्र आज का

वैज्ञानिक देखने की चेष्ठा कर रहा है।

वह देखना चाह रहा है कि मनुष्य किस चित्र वाला है? बाहरी स्थूल शरीर का तो फोटो लिया जाता है। इसका चित्र लेकर मनुष्य खुश होता है कि मेरी ऐसी सुन्दर आकृति है परन्तु उसके पीछे उसका जीवन कितना सुन्दर और पवित्र है, उसकी आकृति तो बाहर के इन फोटुओ से नही देख सकते। डाक्टर लोग भीतर के कुछ फोटो उतार सकते हैं। फोटो उतारने वाले डॉक्टर सा भी आ गये हैं। जिन्होने न मालूम कितने फोटो उतार लिये होगे। परन्तु मनुष्य के मानसिक विचारो का एक भी फोटो यथार्थ रूप मे लिया है या नही? इसमे सन्देह है। फॉरेन के लोग अतरग के फोटो खीचने के लिए त्वरित गति से बढ रहे हैं। परन्तु याद रखिये, आगे बढने वाला यह शरीर नही, आत्मिक शक्ति है। मनुष्य के जीवन मे विचारो को समझने की क्षमता आ जाए तभी कह सकते है कि आगे बढ रहा है। परन्तु वह तभी आ सकती है जब समता को जीवन मे स्थान दे।

आज के लोगों का मस्तिष्क

आकृति के मनुष्य दिख पडते है। परन्तु भीतर से कैसे दिखते हैं? मै इस सुक्ष्म चर्चा को विज्ञान और आध्यात्मिकता की दृष्टि से ज्यादा रखने की स्थिति मे नही हूँ क्योकि आप जानते हैं कि आज अवकाश का दिन है और अवकाश के दिन कई भाई अपने अन्य कार्यो को छोडकर आये है। वे सोचते होगे कि महाराज अन्तरग जीवन का फोटो बतलाने लगे है। हमे तो कुछ समझ मे नही आता, क्योकि अधिकाश मानवो की उर्जा अपनी पारिवारिक समस्याओ मे ही उलझी हुई है। उन्हे गहन विषय समझाना बहुत मुश्किल है। भौतिकता की उलझनो से आज के बुजुर्ग और युवको मे कैसी मायूसी छाई हुई है? वे अपने कार्यक्षेत्र मे गति नही कर पा रहे है। आज के लोगो मे चाहिये जैसा उत्साह नही है। वे अलग पड रहे है। बुजुर्ग और युवको के वीच एक दीवार–सी खडी हो रही है।

युवकों की धर्म के प्रति अरुचि का मूल

बन्धुओ । सोचने का विषय है कि बुजुर्ग आज युवको की गलतियॉ निकालते हैं कि वे आज बिगड गये। वे कॉलेज मे अपनी जिन्दगी व्यतीत कर रहे हैं। वे धर्म कर्म को भूल गये । न मॉ–बाप की सेवा करते हैं और न विनय धर्म को समझते हैं। अपनी स्वच्छन्दता से ही चलते है। इस प्रकार के आरोप बुजुर्गो के चलते है। तो युवक लोग भी पीछे नही रहते हैं। वे कहते हैं कि हम क्या धर्म–कर्म करे? धर्म–कर्म का स्वरूप तो पहले हमे समझाया जाए।

आज के युग मे बौद्धिक धरातल का बहुत विकास हुआ है। वे अपने बौद्धिक विकास से आत्मा और परमात्मा के विषय मे प्रश्न करते है। भग्वान ने कहा "माणुसुत्त दुल्लहा" मनुष्यत्व दुर्लभ है तो सिद्ध कीजिये। साधु क्या है? आचरण क्या है? ऐसे कई प्रश्न युवको के होते है। वे उनका समाधान चाहते हैं। उनके मन मे जिज्ञासा है। जिज्ञासा से ही वे माता पिता के सामने पेश आते हैं। पर जब बुजुर्ग लोग समाधान नहीं कर पाते और डाट देते हैं कि तुम नास्तिक हो गए हो जबकि वे नास्तिकता से प्रश्न नहीं करते, परन्तु समझने के लिये प्रश्न करते हैं। यदि उनका समाधान योग्य स्थल पर हो जाए–माता पिता कर दे तो वे कभी धर्म से विमुख नहीं बनते। मै कभी–कभी सोचता हूँ कि बडे बुजुर्गो मे जितनी तत्त्वो की रूचि नहीं है, उतनी आज के पढे–लिखे युवको मे है।

वे समझना चाहते हैं। उनकी भाषा मे उनको समाधान मिलना चाहिए। माता–पिता यदि समाधान नही दे पाये तो उनको सौम्य शब्दो मे समझाना चाहिये कि तुम्हारे प्रश्न उत्तम हैं, परन्तु मेरे अन्दर इतनी योग्यता नहीं है। तुम नोट कर लो, कोई अच्छे सन्त आयेगे तब तुम्हे ले जाकर तुम्हारे प्रश्नो का समाधान कराऊगा। इस प्रकार से समझाया जाए तो वे धर्म से किनारा नहीं करेगे। ऐसे शब्दो के बजाय यदि आप उन्हे डाट देते है, उनकी जिज्ञासा वृत्ति को ठुकरा देते हैं तो वे धर्म के नजदीक भी होते हैं तो हट जाते हैं। कभी युवक

सन्तो के पास पहुँचे और वे उनका समाधान नही कर पाये तो सन्त सरलता से कह दे कि जितना मेरे मे ज्ञान है उसी से समाधान कर रहा हूँ फिर भी तुम्हारा समाधान नही हो पाया हो तो कोई बडे विद्वान सन्त आये तो उनसे अपनी तृप्ति कर लेना। इस प्रकार सरलता से व्यवहार हो जाता है तो कभी वे धर्म से दूर नहीं भागते हैं। परन्तु जो स्वय भी समाधान नहीं करते और तिलमिला जाते हैं, उसे डाटने लगते है कि तुम तो बिगड गए हो, तो युवक नजदीक आते हुए भी दूर भाग जाते है।

युवको मे कई खूबियॉ भी हैं, परन्तु बुजुर्गो का क्रियाकलाप क्या हो रहा है? जब उनका व्यवहार भी ठीक नही बनता है, उनकी धार्मिक क्रिया भी ठीक नही बनती है। सामायिक, सवर, पौषध धार्मिक क्रियाए करते हुए कही त्रुटि रह गई हो तो उसे सरलता से स्वीकार कर लेना चाहिये। इस प्रकार करने पर युवक और बुजुर्गो मे अच्छी तरह समझौता हो सकता है। युवक सोचे कि ये बुजुर्ग हैं, अनुभवी है, और इनमे होश है तो हम युवक जोश के साथ इनकी छत्रछाया मे क्रान्ति करे। परिवार, समाज और देश–राष्ट्र मे क्रान्ति करे। इस प्रकार दोनो परस्पर समझ कर चले तो दोनो मे समन्वय सध सकता है। अलग–अलग कडी हो जाए तो समन्वय नही सध सकता। मानव अपने जीवन को निखार सकता है, अपनी लाइट जगा सकता है। परन्तु जगेगी कब? जबकि खुद की तैयारी होगी। भगवान् महावीर ने इसीलिये पहले मानवता की बात कही। इसके लिये सबसे पहले खूबी आनी चाहिये कि युवक और बुजुर्गो का जो सघर्ष है वह समन्वय के रूप मे परिणित हो जाए। बुजुर्गो के क्या विचार हैं, इसे युवक समझे और युवको के क्या विचार हैं इसे बुजुर्ग समझाने की क्षमता रखे। यह नही कि जरा–जरा सी बात पर तिलमिला उठे। बुजुर्ग उनकी बात पूरी तरह सुने और शाति के क्षणो मे उनका उत्तर दिया जाए। इस प्रकार समन्वयता का मार्ग निकल आता है।

आज के युवको को मानवता के धरातल पर विशेष आदर्श प्रस्तुत कर एकता का भव्य प्रसग उपस्थित करना चाहिये। जब तक

उनमे एकता नहीं आएगी, तब तक युवक भी कुछ नहीं कर पायेगे। अमूल्य मानव तन निरर्थक चला जाएगा। मैं तो चाहता हूँ कि युवक धक्के खाये तब भी आगे बढे। मैं कभी–कभी रूपक दे दिया करता हूँ कि जो प्रगतिशील युवक है वह तो अपने रास्ते पर चलता रहता है। कितनी ही आपत्तियॉ आये परन्तु हतोत्साहित नही हो, अबाध गति से चलते रहे, लेकिन जोश और होश बराबर रखे, केवल होश रखे, जोश नही रखे या केवल जोश रखे परन्तु होश नहीं रखे तो काम नहीं चलेगा। जब दोनो आ जाते हैं तो कोई कारण नही कि गति और प्रगति मे रूकावट हो।

जल प्रवाह और मानव

विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के शरीर मे पानी का भाग ज्यादा है। पानी से शिक्षा लेनी चाहिए। पानी गतिशील होता है, पानी कही भी गिरे रास्ता बना लेता है। कितना ही बडा पहाड आए परन्तु वह अपना रास्ता बना कर चला जाता है। बडी से बडी चट्टान आ जाए तो उसको भी भग कर देता है और जिधर से रास्ता मिलता है चला जाता है। पानी की गति की तरह यदि मानव की गति बन जाए, वह शीतल ठण्डा बन जाए, क्षमाशील होकर चल पडे तो उसकी गति कैसे रूक सकती है? कई देशो की घटनाएँ है कि युवको ने बहुत कुछ कर के दिखाया है। परन्तु जीवन की दृष्टि से तो जिसमे पानी की तरह तरलता और ठण्डक हो तो वे चाहे वृद्ध हो, बच्चे हो, सब तरूण हैं। अहमदाबाद जैसे शहर मे युवा और बुजुर्गो के मन मे समन्वयता नहीं हो तो विचारणीय विषय बन जाता है। मैं तो परामर्श देता हूँ कि सभी अपने यथायोग्य कर्तव्यो को निभाये। बुजुर्ग अपने कर्तव्यो का पालन करे और युवक अपने कर्तव्यो का।

जन सत्ता क्या नहीं कर सकती?

कल कुछ प्रकरण चला कि अण्डे का प्रचार हो रहा है। वह अण्डे की बात शास्त्रीय दृष्टि से, विचारो की दृष्टि से, कोई व्यक्ति

कदाचित् अलग विचार रखे। परन्तु मानवता की दृष्टि से, सद्विचारो की दृष्टि से मानव–मानव को एकता की भावना से चलना चाहिये। कल अण्डे आदि को लेकर प्रसग चला था तो मत्रीजी कहने लगे कि हमारी सख्या (राजस्थानियो की) थोडी है। मैं सोचता हूॅ कि राजस्थान, सौराष्ट्र, गुजरात, कुछ भी हो परन्तु आप दिशा–भेद से अपने मनो मे भेद मत डालिए। यह तो प्रान्तो की वजह से अलग–अलग भाषा भेद है। परन्तु मानवता मे भेद नहीं आ सकता। विचारो मे स्वत्रता हो सकती है परन्तु ऐसी चीजो मे सभी मानवीय सस्कृति वाले मानव एक हो सकते है। मैने सुझाव दिया था कि जैसा आपने बताया कि यहा पॉच लाख जैन हैं। और जहॉ इतने जैन रहते हो उन सबकी एक आवाज हो तो दुनिया को गूजा सकते हैं, सरकार को हिला सकते है।

जो अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण है वे सभी इसमे एक हो सकते हैं, और एक स्वर से इसका बहिष्कार करना चाहिए। अरे! जहॉ सरकार बदली जा सकती है तो यह तो कुछ ही वस्तुओ के उपयोग–अनुपयोग की बात है। अभी–अभी इन वर्षो मे सरकार मे कितना उठा–पटक हुआ है। इस परिवर्तन का मुख्य आधार जन सत्ता ही तो रही हुई है। लेकिन आज तो क्या हो रहा है, भाई–भाई से भी बोलता नही है। बीच मे सघर्ष की दीवार खडी है। समझ मे नही आता? क्या चद चॉदी के टुकडो को साथ मे लेकर जाना है? आप इन बातो पर गौर कीजिये। यथा–योग्य समन्वय का भव्य प्रसग उपस्थित करिये। जो व्यक्ति अपने मानवीय धरातल पर रहता है तो वह सारे राष्ट्रो को झुका सकता है। वह सबको नतमस्तक करा सकता है।

मानवता-परीक्षक नीतिवाहन

वनारस–काशी नगरी के नरेश विजयवाहन जब स्वर्गस्थ हो गये उनका सुपुत्र जो नीतिवाहन था, बडा बुद्धिमान था। उसमे वडी क्षमता थी। उसने विचार किया कि राज्य मुझको प्राप्त हुआ तो उसमे वेभान न वनू। वह होश मे चलने वाला था। उसने सोचा कि राज्य

का सिस्टम इस प्रकार से चला आ रहा है कि पूर्व का राजा स्वर्गवासी हो जाए तो उसके सिहासन पर युवराज उसका लडका बनता है। उसका राज्याभिषेक पुरोहित, सेनापति, दीवान और उच्चस्तरीय अधिकारी लोग करते हैं। यह इस राज्य की परम्परा है। परन्तु यह परम्परा मानवता के अनुकूल नहीं है। यह दीवार भेद खडा कर रही है। यह दीवान है, सेनापति है, इनका तो मान ऊँचा है और दूसरे नीचे है तो उनके हाथो से अभिषेक नही हो सकता है। यह लोगो के मन मे हीन भावना पैदा करने वाली है ! मैं राजा बनने वाला हूँ, अभिषेक होने वाला है। परन्तु किससे अभिषेक कराऊँ? जो मानवता के धरातल पर नैतिकता को वहन करता हो उसी से कराऊँ। मैं उन्ही व्यक्तियो को ऋद्धिशाली और पदाधिकारी समझता हूँ जिनमे मानवता है। परन्तु जो मानवता के धरातल से गिरे हुए हैं ? वे चाहे सेनापति हो या दीवान परन्तु उनमे मानवता की भूमिका नही है, होश और जोश की स्थिति नहीं है तो मैं ऐसे व्यक्ति को ऊँची स्थिति मे नही समझता हूँ। उनके हाथ से अभिषेक नही कराना चाहता हूँ। यह विपरीत नियम होगा, पर मै इसे तोडना चाहता हूँ। इससे मैं मानवीय धरातल से विपरीत नहीं होता हूँ।

निर्णय कर लिया मन मे कि मुझे अभिषेक परम्परागत रीति से नहीं कराना, और जब दीवान जी कहने लगे कि युवराज ! राज्याभिषेक का मुहूर्त निकलवाना हे ? तो नीतिवाहन ने कहा कि कराना अवश्य हे। पर मैं कुछ और ही सोच रहा हूँ। दीवान ने पूछा– आप क्या सोच रहे हो? तब युवराज ने कहा– यह समय पर बताऊगा। परन्तु राज्य मे एक ऐलान कराना चाहता हूँ कि मानवीय दृष्टि से जीवन गुजारने के लिए जिसकी जो आवश्यकता हो वे सभी व्यक्ति अपनी–अपनी लिस्ट बनाये और मेरे सामने पेश करे । में उनका प्रबन्ध करके आगे के लिए सोचूगा। यह सुनकर दीवान जी आश्चर्य मे आ गये और कहने लगे कि आप यह कार्य कर रहे है तो क्या पहले ही आप खजाना खाली करना चाहते हैं? युवराज ने कहा–दीवानजी ! मैं ओर ही ढग का प्राणी हूँ। आप मेरी आज्ञा का पालन करिये, ओर जब

जनता के कर्णगोचर यह ऐलान हुआ कि राजकुमार राज्याभिषेक कराने से पहले जनता कि आवश्यकताओ की पूर्ति करना चाहते हैं। वे लिस्ट पेश करे । परन्तु इमानदारी से करे।

आवश्यकताएँ किसके कितनी ?

अब कौन क्या सोचे ? जब मिलने वाला था तो जिसको आवश्यकता न थी, उसने भी आवश्यकता लिख दी। जनता के अन्दर से जो लिस्ट मिली तो देख कर सब हैरान हो गए। अरे ! गरीबो की तो आवश्यकता थी वो तो ठीक है। परन्तु धनवानो ने भी अपनी आवश्यकताएँ लिख दी। जो इस लिस्ट को ले रहा था वह हैरान हो गया। उसने सारी लिस्टे युवराज के सामने रखी और कहने लगा कि आप देख लीजिये। आप तो मानवो मे समानता लाना चाहते हैं। आप किसे इन्कार करेगे। इसमे अफसर, दीवान वगैरह सब कोई आ गए। यहाँ भी यदि कोई ऐलान किया जाए कि अपनी–अपनी आवश्यकता की लिस्ट रख दे तो पता लग जाएगा और यदि यहाँ के दलाल, दया–पौषध की लिस्टे बनाने लगे तो कितनी लिस्टे आयेगी। जहाँ मानवता लाना है वहाँ तो मानव जरा सिकुडता है।

खैर ! युवराज के सामने दीवान जी बैठे और कहा– हुजूर ! इन लिस्टो के मुताबिक तो यह खजाना जितना है उतना उलटना पडेगा। गरीब बनना पडेगा और फिर अभिषेक होगा तो आपको राजा कौन मानेगा ? परन्तु उस समय युवराज बडे गम्भीर थे। क्योकि उनके सामने मानवता की समान भूमिका थी। जोश के साथ होश के समन्वय की दृष्टि से चले, मानव के साथ मानवता का सबध स्थापित करना चाहते थे। रास्ता ढूढना चाहते थे कि कैसे क्या करू ? लिस्ट देखकर युवराज ने दीवान को उत्तर दिया कि आप कि बात मान्य हे। लिस्ट तो देख ली, परन्तु एक बार फिर सर्वे करो कि गरीब या अमीर कोई बाकी तो नहीं रह गया है ? सरकारी कर्मचारी घर–घर पहुँचने लगे। सारे गाँवो मे घूम गए।

मानवता का ज्वलन्त प्रतीक : एक किसान

एक गॉव मे एक किसान जो पढा लिखा था और घास–फुस की झोपडी मे रहता था। उसके थोडी सी खेती थी, जिससे जीवन निर्वाह भी पूरा नहीं होता था। लकडिया काट कर बेचता था। वस्त्र भी पूरे तन पर नही थे। इसलिए फटे पुराने वस्त्र पहन रखे थे। पैरो मे जूतियॉ और सिर पर पगडी नहीं थी। उसके गॉव मे कर्मचारी पहूँचे और पूछा कि इस गॉव मे– तुम्हारे गॉव मे कोई निवेदन करने वाला अवशेष तो नही रहा ? गॉव के सदस्यो ने कहा– हॉ हुजूर ! एक बुद्धिहीन किसान गॉव के बाहर झोपडी बना कर रहता है। वह बाकि रह गया है। वह तो इतना बुद्धू है कि निवेदन नहीं दे रहा हे। हम उसके पास निवेदन लिखवाने पहूँचे तो उसने कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो अपने पुरूषार्थ के बल पर विश्वास करता हूँ। मानवता की भूमिका पर मानवता को तिलाजली देने वाला कार्य नही कर सकता हूँ। हॉ ! पुष्टि करने वाला कार्य कर सकता हूँ। सरकार देना भी चाहे तो मैं कुछ नहीं लेना चाहता। यह सुनकर पुलिस के जवान उसके यहॉ पहुँचे, उनको देखकर किसान ने मानवता के नाते सत्कार किया। इस दृष्टि से नहीं कि सरकारी पुलिस है। किसान ने एक चटाई डाल दी ओर बैठाया, और कहने लगा कि आप दूर से चलकर आये हैं तो कुछ प्यास लगी होगी। सचमुच वे प्यासे थे। उनकी प्यास बुझाई। पुलिस ने कहा–हम यहॉ इसलिये पहुँचे हें कि अजीब राजकुमार मानवो मे एकता लाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि निवेदन करने मे कोई भी अवशेष नहीं रहना चाहिये। अत तुम भी अपनी माग को पेश करो। उसने कहा कि मुझे नहीं करना है। उन्होने कहा– मत करो। परन्तु युवराज के सामने तो चलो। तो वह उनके साथ चला गया। शिष्टाचार साधा। युवराज ने उसकी तरफ एक दृष्टि डाली। सिर से पैर तक उसको देखा। वे युवराज आज की पढाई वाले युवराज नही थे। उन्होने सरकारी नीतियो के अलावा मानवीय धरातल पर मानवता को पहचानने की कला भी सीखी थी। उन्होने जब अवलोकन किया तो ऊपरी आकृति की सौम्यता हे, फटे

वस्त्र हैं, पैरो मे जूतियॉ नही है, ब्याऊँ फट रही हैं, सिर पर कुछ नहीं है। परन्तु उत्साह का पुतला है।

युवराज उसको देखकर जोश मे आ गया कि मेरे नगर मे ऐसा उत्साह रखने वाला गरीब मनुष्य भी मिल सकता है। तब युवराज ने कहा– भाई ! तुमने आवेदन पत्र क्यो नही पेश किया ? जबकि तुम्हारी ऊपरी आकृति बता रही है कि तुमको बहुत कुछ आवश्यकता है। परन्तु तुम क्यो नहीं लिस्ट पेश कर रहे हो ? तब उसने कहा – हुजूर ! आपकी कृपा दृष्टि चाहिये। मेरे पास ऊपरी स्थिति तो नही है। परन्तु मानवता की थाती है। मेरे शरीर के अग उपाग आप देख रहे है। इनमे सब कुछ पूर्ति करने की क्षमता है। मैं नैतिक तरीके से प्राप्ति करता हूँ। अनैतिक तरीके से मुफ्त का नही लेना चाहता हूँ। यह आपके खजाने की जो चीजे हैं वे आपकी नहीं, जनता की है उन्हे यो ही नही लुटा दे। मानव–मानव मे दरारे पड रही हैं, उनको पाटने के लिये यह खजाना है। ये दीवान, ऑफीसर, धनवान यदि और लेना चाहते हैं तो ये मुफ्तखोरे नही तो और क्या हैं ?

मै यही कहना चाहता हूँ कि जनता की सम्पत्ति का दुरुपयोग नही करे। आप इन पुरूषो के पीछे यदि जनता के पैसो को खर्च करेगे तो बडी अराजकता फैल जाएगी। यह सुनकर युवराज सोचने लगा कि मैने कल्पना भी नही की थी कि कोई मुझको भी उपदेश दे सकेगा। युवराज ने कहा – भाई ! यह तो तुम्हारा सुझाव ठीक है कि जो कर्मचारी है, ऑफीसर है, उन्होने जनता से और मुझसे लेकर घर भर लिया है और अब इसकी आवश्यकता नही है। परन्तु तुम तो आवश्यकता वाले हो। तुम क्यो नही निवेदन करते हो ? तब उसने कहा – हुजूर आपकी बात ठीक है। परन्तु मैं घरेलू निवेदन करना चाहता हूँ, क्योकि मेरे पास तो भुजबल है। मुझे केवल पेट की आवश्यकता है, पेटी की आवश्यकता नहीं, वह मैं पुरूषार्थ द्वारा भर लेता हूँ, और जिस दिन पेटी के पीछे पड गया तो मानव न रह कर दानव बन जाऊँगा।

चार अंगों की स्थिति कितनी क्या है मानवों में ?

बन्धुओ ! सोचो कि भगवान् महावीर के यही तो वचन हैं– "माणुसत्त सुइ सद्धा" जब तक मानवता नही आयेगी तो सच्चे माने मे शास्त्र का श्रवण नहीं होगा। आज तो शास्त्र श्रवण भी दुर्लभ हो रहा है। चन्द चादी के टुकडो की जो लालसा लग रही हे, उसके पीछे एक घण्टा भी वीतराग वाणी का श्रवण नहीं कर पा रहे है। श्रवण कर ले तो जल्दी श्रद्धा नहीं जगती और श्रद्धा आ जाए तो आचरण जल्दी से नहीं बनता। वीतराग सर्वज्ञ तो मानव की अन्तरग ओर बाहरी बातो को जानने वाले थे। उन्होने जो कुछ कहा है वह तहमेव मे सत्य है।

अभिषेक एक किसान द्वारा

हाँ तो युवराज उस किसान–फटे हाल की मानवता से ओत–प्रोत वाणी को सुनकर फूला नहीं समाया ओर उसी समय दीवान,सेनापति, अफसरो को सामने बुलवाया और कहने लगा कि आज आप ऊँची–ऊँची पदवियॉ लेकर चल रहे हो और ऊचे–ऊचे कहलाते हो, परन्तु आप मे मानवता कितनी हे ओर इसमे मानवता कितनी भरी हुई है? जबकि इसको हर चीज की अत्यन्त आवश्यकता हे। परन्तु आग्रह करने पर भी नहीं ले रहा हे और आप लोगो ने इतनी लम्बी लिस्ट बनाकर भेज दी। में पूछता हूँ कि आप इनका क्या करोगे? यह सम्पत्ति तो एक दिन नष्ट हो जाएगी पर मानवता अमर रहेगी। अब मैं राजा बनना चाहता हूँ, पर मेरा राज्याभिषेक आपसे नही होगा। मानवता के प्रतीक, नैतिक प्रामाणिक इस पुरूष से होगा।

जब उस ने यह एलान करवाया तो सब ठण्डे हो गये। लोग उसे कहने लगे कि अब तो तुझे ही अभिषेक करना है। कुछ कपडे तो अच्छे पहन ले। तो वह कहने लगा कि नहीं ! मे तो इन वस्त्रो मे ही करूगा। उसने अभिषेक किया। सबके मुहँ से निकला मानवता की जीती जागती मूर्ति यह किसान है। सबने सोचा कि अव हमको भी जीवन मे जीवित मानवता लाने की चेष्टा करनी चाहिये। देखिए ! कितना भी प्रलोभन आने पर भी उस किसान ने अपनी नेतिकता

और मानवता नही छोडी।

समीक्षण करो जीवन का

बन्धुओ ! आप यह बात तो सुन गए। मैं तो युवको और बुजुर्गो को कहूगा कि वे समन्वयात्मक स्थिति पैदा करे। मानवता आपनाये, समीक्षण जीवन पद्धति से चले। चाहे कितनी ही धक्का—मुक्की मिले, आपत्तियॉ आये, परन्तु एकता के सूत्र मे बधे हैं तो एक दिन वे सारे ससार को एकता के सूत्र मे बॉध सकते हैं। आज क्यो अलग होते है युवक और बुजुर्ग लोग ? यह प्रसग प्रत्येक व्यक्ति के लिए सोचने का है।

मै पहले बोल गया था कि वैज्ञानिक मानसिक चित्र ले सकते है, परन्तु वे क्या, आप भी ले सकते हैं। आप आखे बद करके देखिए कि आपकी मन की वृत्तियॉ कैसी हैं? वे मानव की हैं या दानव की है? आप तटस्थ रूप मे समता के साथ, समीक्षण ध्यान पूर्वक देखेगे तो आपको यह ज्ञात हो जाएगा। इस ध्यान साधना मे आगे बढेगे तो अन्यो के भी चित्र उतारने लगेगे।

बन्धुओ ! आप इस मनुष्य जीवन का अवमूल्यन नही करे। चन्द चॉदी के टुकडो के पीछे अपमान नही करे। मानवता से न गिरे। मानवीय धरातल के साथ, समता के साथ एक होकर इन सब बातो का चिन्तन करे कि हमको समाज मे क्या सुधार करना है? धार्मिक क्रियाओ के लिए, स्वाध्याय के लिए आपको समय क्यो नही मिल रहा है ? ऐसे ही जिन्दगी क्यो बर्बाद कर रहे है? जब तक मानवता के धरातल पर तैयारी नही होगी तो मानव के अन्दर का आतमराम प्रकट नही होगा।

बल्ब का घेरा है, तभी उसमे बिजली का प्रकाश आता है। उस समता के बल्ब समीक्षण ध्यान के माध्यम से मानवता का प्रकाश फैलाना है। जो अपने जीवन मे मानवता और समता लाने का प्रयत्न करेगे और जीवन का मूल्याकन करेगे तो उनका जीवन इस लोक मे और परलोक मे, उभय लोक मे आनन्दमय बनेगा। ☐☐

साध्य निर्धारण

साध्य का निर्धारण साधना से पूर्ण होना आवश्यक है। साध्य का निर्धारण हुए बिना साधना की भी कैसे जा सकती है अर्थात् साध्य-विहीन साधना तेली के बैल की तरह केवल भटकाव रूप व्यर्थ श्रम ही सिद्ध हो सकती है। इसलिए साधक को साधना मे गति करने के पूर्व अपना लक्ष्य अवश्य निर्धारित कर लेना चाहिए।

जीवन रहस्य का ज्ञान : शान्त भाव का अवलम्बन

नदी के नहीं चाहते हुए भी उसमे तूफानी ऊफान आ जाता है किन्तु जो नदी गम्भीर होती है, गहरी होती है, वह प्रलय का रूप धारण नही करती। वह उस तूफान को अपने भीतर समाहित कर लेती है। इसी तरह जीवन के रहस्य को जानने वाला अपने आवेगो को/तूफानो को बाहर झलकने नही देता और न ही बाह्य क्षेत्र मे प्रलय ही मचाता है बल्कि अपने अन्तर मे ही वह उन आवेगो/तूफानो को समाहित कर स्वय शात भाव का अवलम्बन लेता है और समाज जीवन को अकम्प व उदात्त बनाए रखता है।

-आचार्य श्री राम